मन तूँ जोत सरूप है

दास शिव देव सिंह

मन तूँ जोत सरूप है

दास शिव देव सिंह

सर्वाधिकार सुरक्षित

मन तूँ जोत सरूप है
दास शिव देव सिंह

प्रथम संस्करण : फरवरी २००८

प्रकाशन एवं वितरण
सचखण्ड नानक धाम
डेरा महाराज दर्शन दास जी
इन्द्रापुरी, लोनी, जिला गाजियाबाद, (उ.प्र.)

धन दर्शन

नानक नाम चढ़दी कला।।
तेरे भाणे सरबत दा भला।।

"मुझमें कहाँ ताकत इतनी कोई बात तेरी कर पाऊं,
बस इतना करम करना तेरे चरणों में सदा रह पाऊं,
हो जाऊं तुझमें जज़्ब जैसे कतरा रेत में,
जब भी जुबाँ खुले मेरी बस गीत तेरे ही गाऊं।"

(दास शिव)

विषय सूची

मन तू काहे करे चतुराई	9
माई मनु मेरो बसि नाही	19
बंदे सुपने जिओं संसार है	33
पंच चोर मिल लागे नगरिया	50
काम	67
क्रोध	73
लोभ	81
मोह	85
अहंकार	91
सभ किछु घर माहि	96
रे मन ऐसो करि संनिआसा	115

सम्पादकीय

मन एक ऐसा विषय है जिसके बारे में आदि काल से सन्त-महात्मा, पीर-पैगम्बर व बड़े-बड़े फकीर चर्चा करते आ रहे हैं, परन्तु फिर भी ऐसा ग्रन्थ या ऐसी कोई पुस्तक तैयार नहीं हो सकी जिसमें 'मन' जैसे विषय को पूर्ण रूप से परिभाषित किया गया हो।

मन अपनी तीव्रता में अद्वितीय है। इसकी तीव्रता को मापने के लिए न तो कोई यन्त्र तैयार हो सका है और न ही इस पर नियंत्रण रखने वाले किसी एक निश्चित साधन को मान्यता दी गई है। प्रत्येक साधू, सन्त व महात्मा ने इसे नियंत्रण में रखने की अलग-अलग युक्तियाँ बताई हैं परन्तु इनमें से अधिकतर युक्तियाँ दीर्घ काल तक मन को नियंत्रण में रखने में सक्षम नहीं है। जीवात्मा की अध्यात्मिक उन्नति में सबसे बड़ी बाधा मन है। इस बाधा को दूर किस प्रकार किया जाए अर्थात् मन को वश में कैसे किया जाए? इसके लिए सबसे पहले हमें मन के स्वरूप को समझना पड़ेगा। मन ब्रह्म का अंश है और आत्मा के साथ ही हमारे शरीर में विद्यमान है।

आत्मा के लिए शरीर एवम् मन दोनों का अस्तित्व अनिवार्य हैं। यदि आत्मा के पास शरीर नहीं तो प्रेत समान है और यदि मन अथवा विचार नहीं तो वह पशु समान है। पशु एवम् मनुष्य में अन्तर मात्र मन के होने या न होने का है। मनुष्य के पास बुद्धि है, विचार है, सोचने समझने की शक्ति है जो उसे पशुओं से भिन्न करती है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा और मन की उपस्थिति उसे वास्तविक अर्थों में अस्तित्व प्रदान करती है।

अब बात आती है आत्मा व परमात्मा के मिलन की। आदिकाल से ही इस मिलन की सबसे बड़ी बाधा मन को माना गया है। दरअसल यह बाधा उनके लिए है जो प्रत्येक कार्य में अपने मन को सन्मुख रखते हैं अन्यथा आत्मा परमात्मा को मिलाने में मन सबसे

बड़ा सहायक सिद्ध होता है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि जैसे एक साइकिल के दो पहिए हैं एक आत्मा और एक मन। यदि मन वाले पहिए को आगे लगा दिया और आत्मा को पीछे तो वह साइकिल सदैव गलत दिशा में चलेगी परन्तु यदि आत्मा को आगे लगाकर मन के पहिए को पीछे लगाएं तो वह साइकिल तीव्र गति से अध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर होगी। अध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए दोनों पहियों का होना आवश्यक है। मन को त्याग कर या दबा कर इस क्षेत्र में प्रवेश सम्भव नहीं है। मनुष्य उसी क्षेत्र में अत्याधिक सफल होता है जिसमें वह मन लगाकर कार्य करता है। यदि मन की दिशा अध्यात्म की ओर मुड़ जाए तो जीवात्मा अध्यात्म क्षेत्र में भी अद्वितीय सफलता हासिल कर सकती है। आवश्यकता है मात्र मन की दिशा बदलने की न कि इस को दबाने या नियंत्रण की सीमा में बाँधने की।

दास शिव देव सिंह द्वारा लिखी गई यह पुस्तक "मन तूँ जोत सरुप है'' जहाँ मन के स्वरूप को समझने में मदद करेगी वहीं मन की दिशा अध्यात्मिक क्षेत्र में बदलने में भी मददगार साबित होगी। एक साधारण व्यक्ति का 'मन' जैसे विषय को चुनना और एक पुस्तक के रूप में समाहित करना दास शिव देव सिंह की प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने मन विषय पर मात्र अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करके विषय को एक पक्षीय नहीं रखा अपितु इसमें पाठकों के सन्मुख कई प्रश्न उजागर करके उनको भी भागीदार बनाने की चेष्टा की गई है।

पाठकों द्वारा प्रश्नों का उत्तर खोज लेना ही लेखक के अनुसार उनकी इस पुस्तक का सही मूल्यांकन होगा।

दास परमजीत कौर
-सम्पादक-
(सचखण्ड नानक धाम)

दो शब्द

जब दास ने कुछ लिखने के लिए विषय चुनने का कार्य प्रारंभ किया था उस समय एक ही बात दिमाग़ में थी कि विषय ऐसा होना चाहिए जिसके बारे में विवरण अधिक न मिलता हो अन्यथा जिन विषयों के बारे में काफी साहित्य उपलब्ध होता है उसको पाठक अधिक रूची से नहीं पढ़ते क्योंकि बातें बहुधा वही होती हैं और पाठक बहुत जल्दी ऊब जाता है। बहुत खोजबीन की, हरेक विषय के बारे में अनेक तरह के कथानक व साहित्य मिले परन्तु एक विषय के बारे में कोई विस्तृत जानकारी न मिली और वह विषय था मन। मन के बारे में जब कोई भी विस्तृत पुस्तक न मिली तो दास ने सोचा कि इसी विषय पर कुछ लिखा जाए। विषय चुन लेने के बाद जब इस पर कार्य करना शुरू किया तो मालूम हुआ कि यह विषय इतना आसान नहीं है जितना दिखता है। जब भी कुछ दिमाग़ में आता तो लिखने बैठता और पता चलता कि दिमाग़ खाली। लगभग छः माह तक यही चलता रहा सिवाय इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण पक्तियाँ ही लिख पाया और कुछ भी आगे बढ़ने का नाम ही न ले रहा था क्योंकि पुस्तक लिखने के लिए बहुत कुछ चाहिए होता है चंद पक्तियाँ काफी नहीं होतीं।

इस बारे में एक बार हुज़ूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी से भी बात हुई तो आपने हौंसला बढ़ाते हुए कहा कि यदि हुज़ूर ने लिखवाना होगा तो लिखवा लेंगे क्यों व्यर्थ में चिंता कर रहे हो। हुज़ूर से जैसे एक इशारा मिल गया। जो पक्तियाँ लिखीं थी उन पर कार्य शुरू किया तो कुछ खाका तो नज़र आया परन्तु पुस्तक के स्वरूप के बारे में कुछ समझ में नहीं आया।

अंततः दास को 'दास नारंग साहिब' के बारे में ध्यान आया जिनका ज़िक्र दास ने इस पुस्तक में भी किया है तो दास ने हुजूर के चरणों में निवेदन किया -"यदि वाकई आप मुझसे कुछ लिखवाना चाहते हैं तो मुझ पर कृपा करो, मेरी कलम आप स्वयं बन जाओ, क्योंकि दास अपने दिमाग़ से जो भी लिखेगा उसका असर पढ़ने वाले पर नहीं होगा, बल्कि उसी के कहे का असर जिज्ञासु पर होता है जो अधिकारी पुरूष हो।" हुजूर तो करूणानिधि हैं, सदैव सेवकों के कार्य संवारना आपका क़ाम है। उस दिन के बाद दास को सोचना नहीं पड़ा बस कलम लेकर बैठ गया और जो हुजूर लिखवाते गए लिखता गया। लगभग दो माह के परिश्रम के बाद यह पुस्तक जिज्ञासु जीवों के चरणों में प्रस्तुत है।

बेशक यह सारा कथानक दास के लिए उधार के ज्ञान की भाँति है जो प्रेरणा तो दे सकता है परन्तु पढ़ने वाले का अपना ज्ञान नहीं बन सकता। हाँ यह अवश्य है कि यदि इससे प्रेरणा पाकर कोई एक भी इस ईश्वरीय मार्ग पर चल निकला तो इस पुस्तक का जो लक्ष्य है वह पूरा हो जाएगा क्योंकि जो उठकर चल देता है वहीं कहीं तक पहुँचता है। पढ़ पढ़कर अपने को ज्ञानी कहलाने वालों के लिए यह मार्ग है ही नहीं।

साध संगत के श्री चरणों की रज हो पाऊँ ऐसी हुजूर के पावन चरणों में प्रार्थना है और कामना है कि हम सबके हृदय में वह परम पिता जो सदा से विराजमान है अपने प्रकाश से हमारा अंतर प्रकाशमय कर दे। यद्यपि इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब की दिव्य वाणी जो इस पुस्तक में समाहित की गई है, पूर्ण रूप से शुद्ध हो यदि फिर भी कोई त्रुटि रह गई हो तो दास क्षमाप्रार्थी है।

दास शिव देव सिंह

मन तू काहे करे चतुराई

अक्सर रोजमर्रा की ज़िन्दगी में हमें यह बातें सुनने को मिलती हैं कि "मेरा मन नहीं मान रहा यह काम करने को," "मेरा मन चाहता है कि मैं यह करूँ," "जी हम फलां सन्तों के पास गए थे पर हमारा मन नहीं माना" या "उनकी बातें सुनकर मेरा मन ठहर सा गया है।" ऐसा बहुत कुछ हमें रोजाना सुनने को मिलता है। मज़े की बात है कि हम लोग यह बातें कह तो जाते हैं पर यदि ध्यानपूर्वक मनन किया जाए तो पाएँगे कि जिस मन का हम बार बार ज़िक्र करते हैं वह हमारे लिए एक शब्द मात्र है और इससे अधिक कुछ नहीं। एक ऐसा शब्द जो रहस्यमयी है जिसके बारे में यदि हमें कुछ बोलने या समझाने को कहा जाए तो शायद हम दो शब्द भी न बोल पाएँ।

मन क्या है? कहाँ रहता है? कहाँ से आया है इस बारे में हमारी सब बातें सारा ज्ञान कोरी कल्पना से बढ़ कर कुछ भी नहीं है। बाहरी तौर पर यदि देखा जाए तो मन नाम का कोई अंग प्रत्यंग दिखाई नहीं देता और न ही स्पष्ट तौर पर इसकी कोई परिभाषा ही मिलती है। बस अपने कोरे ज्ञान के आधार पर हम इसे परिभाषित करने का यत्न अवश्य करते हैं। कहने का भाव यह है कि इस मन के बारे में कोई निश्चित् धारणा न आज तक कोई बना पाया है और न ही कोई बना पाएगा। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि इसी मन से हम जीवन में सबसे अधिक प्रभावित रहते हैं। कबीर साहिब अपनी वाणी द्वारा समझा रहे हैं :-

"अकथ कथा या मनहि की कह कबीर समझाय।
जा को येहि समझि परै ता को काल ना खाय।।"

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

कबीर दास जी समझा रहे हैं कि इस मन की कथा ऐसी है जिसे शब्दों में ब्यान करना कठिन है और जो इस मन को समझ जाता है वह इस के चुँगल से आज़ाद हो जाता है और उसे फिर काल का भय नहीं सताता और तो और मृत्यु का भी भय जाता रहता है।

सृष्टि की रचना से लेकर आज तक जितने भी सन्त-महात्मा, पीर-पैगम्बर हुए हैं उन्होंने मन के बारे में, मन की कार्य शैली के बारे में अपनी अपनी परिभाषा व अपने अपने समयानुसार बहुत विस्तृत विवरण दिया है फिर भी आधुनिक युग में जहाँ वैज्ञानिक विकास अपनी पराकाष्ठा पर है यह शब्द अभी तक रहस्य की गर्त में छिपा हुआ है। दूसरे शब्दों में हम ये भी कह सकते हैं कि यह मानवीय प्रवृति है कि जो बात समझ में न आए उसे रहस्यमयी या ईश्वरीय सत्ता बता कर मानव अपना पल्ला झाड़ लेता है। रोजाना हम पूजा-पाठ में, धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन में बार बार इस शब्द को रट रहे हैं परन्तु जो मार्ग हमारे महापुरूषों ने हमें दिखाया है या इस मन को समझने इसे वश में करने का जो मशवरा दिया है उस मार्ग पर चलने का या उस मशवरे पर अमल करने का उद्यम या परिश्रम हम नहीं करते। आसान शब्दों में कहें तो उन रास्तों पर हम चलना ही नहीं चाहते। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम सोचते हैं कि इससे हमारा समय खराब होगा। जितना समय हम इसकी खोज में लगाएँगे उतने समय में और बहुत कुछ किया जा सकता है। एक बहाना जो सबसे अधिक प्रचलित है वह यह है कि जब हमारे पुरखे आज तक इस

काम को नहीं कर पाए तो भला हम कैसे कर सकते हैं? कई लोग तो इतना कह कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं कि जिन लोगों ने इस भेद को जाना है समझा है वे तो ईश्वरीय अवतार थे, हम भला ईश्वर की बराबरी कैसे कर सकते हैं?

सबसे आधुनिक ग्रन्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में गुरु साहिबान ने अपनी इलाही वाणी द्वारा हमें इस मर्म को समझाने की कोशिश की है परन्तु बिना परिश्रम के फल प्राप्ति के इच्छुक हम लोग केवल पठन पाठन और माथा टेकने में ही विश्वास रखते हैं क्योंकि हमें ऐसा महसूस होता है कि ऐसा करने से हमारी ईश्वर के प्रति जो एक जिम्मेदारी है वह पूरी हो जाती है। दरअसल आधुनिक युग की सुख सुविधाओं से हम इतने आलसी हो गए हैं कि हम परिश्रम करना ही नहीं चाहते। आज अधिकतर लोगों के मुख से यह बात सुनने को मिलती है कि जी अपने काम काज से ही फुरसत नहीं मिलती तो दूसरे के लिए कहाँ से समय निकालें? जब समय आएगा या जब फुरसत होगी तब धर्म कर्म भी कर लेंगे। हम मूर्ख यह नहीं जानते कि हमारे पास दूसरों के लिए तो समय है पर अपने लिए ही समय नहीं है। जिन्हें अपना मान कर हम अपना समय सतत् गवाएँ चले जा रहे हैं वास्तव में वे हमारे हैं ही नहीं और जिसे हम ग़ैर मान कर समय नहीं दे पाते वही केवल हमारा अपना है और वह है हमारे अंतर में परम पिता परमात्मा का दिव्य अंश जिसे हम आत्मा या प्राण पखेरु के नाम से जानते हैं। जो हमारा अपना है उसे हम सदैव पराया मान कर उसका तिरस्कार करके अपना बहुमूल्य जीवन गँवा बैठते हैं। जब हमें यह बात समझ में आती है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। अकारण ही हम अपना यह बहुमूल्य समय गँवा देते हैं।

"तूँ क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल,
सिर पर बैठा काल दिनो दिन वादा पूजै,
आज काल में कूच मूरख नहिं तोकह सूझै।।"

(बाणी पलटू साहिब जी)

पलटू साहिब जी समझा रहे हैं कि हे मूर्खो! तुम क्यों गफलत की नींद में सो रहे हो? आज नहीं तो कल तुम्हे यह शरीर त्यागना ही पड़ेगा क्योंकि काल तुम्हारे सिर पर ही चक्कर लगा रहा है। फिर क्यों तुम उससे आँखें मूंदे हो? हुजूर महाराज दर्शन दास जी भी अपनी वाणी में समझा रहे हैं:

"मन तू काहे करे चतुराई।
राम नाम धन पाइओ नाही बिरथा उमर गवाई।।"

(यशवन्ती निराधार धाम पहला)

गुरुवाणी में कहा गया है:-

"बीत जैहै बीत जैहै जनमु अकाज रे।।
निस दिन सुन कै पुरान।। समझत नह रे अजान।।
काल तो पहूचिओ आनि कहा जैहै भाजि रे।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-१३५२-५३)

नवम् पातशाह श्री गुरु तेग़ बहादुर साहिब जी इस शब्द द्वारा समझा रहे हैं कि जगत के धन्धों में हम मूढ़मति अपना जीवन अकारण ही गँवा रहे हैं। नित्य प्रति धर्म गंन्थों का पाठ करने के बावजूद हमारी बुद्धि में यह बात नहीं आती। गुरु साहिब समझा रहे

हैं कि जिस काल से हम भाग रहे हैं वह तो हमारे सिर पर मंडरा रहा है। उससे आज तक कोई बच पाया है जो तुम बच पाओगे? इसी संदर्भ में भक्त कबीर साहिब फर्मान करते हैं कि:-

उपजै निपजै निपजि समाई, नैनहु देखत इहु जगु जाई।।
लाज न मरहु कहहु घरू मेरा, अंत की बार नहीं कछु तेरा।।

(आदि ग्रन्थ, अंग-३२५)

वे समझा रहे हैं कि इस मृत्यु लोक में जो उत्पन्न होता है वह बढ़ता है और फिर नष्ट हो जाता है। जो कुछ भी तुम्हे इस संसार में दिखाई देता है वह नष्ट होने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ तक कि जिस घर को (शरीर को) तुम अपना मान कर चल रहे हो वह भी अन्त की बेला में तुम्हारा साथ छोड़ जाएगा आग की लपटों में तुम्हारा यह शरीर जल कर राख हो जाएगा। अरे बेशर्मो! क्या तुम इसी का अभिमान कर रहे हो?

"किन कारण तू जग मे आइआ मन महि सोच विचार।
मेरी मेरी करता रहा तू प्रभ को दिया बिसार।।"

(यशवन्ती निराधार धाम पहला)

हुजूर महाराज दर्शन दास जी अपने सत्संगों में अक्सर समझाया करते थे कि हे मनुष्य! तनिक विचार करो कि तुम किस कारण इस संसार में पैदा हुए हो? क्यों अपने वास्तविक-लक्ष्य को भूल कर मैं अथवा मेरी के चक्कर में फँस कर व्यर्थ ही आयु गँवा रहे हो। आप कहा करते थे कि सृष्टि में जितने भी जीव हैं उन सबका सरताज मानव को ही कहा गया है क्योंकि इसी जन्म में मनुष्य अपना वह धर्म

निभा सकता है जिसका वादा उसने मातृ गर्भ में उलटे लटकते हुए ईश्वर से किया था और कहा था कि हे ईश्वर! मुझे इस गर्भ गृह से मुक्ति दे मैं मृत्यु लोक में जाकर तुम्हारा सुमिरन करके तुमसे दोबारा मिलने का प्रयत्न करुँगा परन्तु जैसे ही मनुष्य जन्म लेता है वह मन के प्रभाव में आकर सब कुछ भूल जाता है। दिन रात अपने सांसारिक रिश्तेनातों को बनाए रखने में प्रयासरत् रहता है और उस पवित्र नाते के बारे में भूल जाता है जो उसकी आत्मा का अपने स्रोत परम पिता परमात्मा से है। मनुष्य उस फल को पाने के लिए दिन रात परिश्रम करता है, जोड़ तोड़ करता है जो उसे कभी सुख प्रदान कर ही नहीं सकता। जो फल आनन्द दे सकता है उसे नज़रअंदाज़ करना मनुष्य का स्वभाव बन गया है।

हम लोग अपने जीवन काल में बहुत परिश्रम करते हैं। सांसारिक सुख सुविधाओं को जुटाने के लिए भागे फिरते हैं या यह कहना अधिक तर्क संगत होगा कि उस सुख के लिए मारे मारे फिरते हैं जो क्षणभंगुर हैं। एक सुख मिल जाए तो दूसरे सुख की तृष्णा में फँस जाते हैं, न मिले तो असन्तुष्टि में, ग्लानि में जीते हैं। अक्सर देखने में आता है कि लोग शिकायत करते हैं कि उनके परिश्रम का फल उन्हे नहीं मिला या फल मिला भी तो वह उचित न था। इसी उधेड़बुन में मनुष्य अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ गँवा देता है और कुछ लोग तो यह कहकर अपना दिल बहला लेते हैं कि यह हमारी किस्मत में नहीं था या जैसी ईश्वर की इच्छा परन्तु एक बात तो तय है कि वास्तविकता से कोई भी परिचित नहीं है।

हुजूर इस बात को इस तरह समझाया करते थे कि क्या आप अपने बच्चे को कोई ऐसी वस्तु देते हो जो उसकी सेहत के लिए या

भविष्य के लिए हानिप्रद हो? क्यों? क्यों नहीं देते? क्योंकि माँ-बाप अपने बच्चे का सदैव भला ही सोचते हैं इसलिए उसके ज़िद करने के बावजूद उसे वह चीज़ नहीं देते जो उसके लिए लाभप्रद न हो या जो उसे दु:खी कर दे। बच्चा तो बच्चा ही है अपना भला-बुरा नहीं समझता अपने भविष्य में झाँक कर नहीं देख सकता इसलिए उसे अपने माँ-बाप से सदैव ही गिला रहता है कि माँ-बाप उसकी माँग पूरी नहीं करते। इसी तरह ईश्वर, जो हमारा मात-पिता है, वह हमें वह वस्तु कैसे दे सकता है या हमारी वह माँग कैसे पूरी कर सकता है जो भविष्य में हमारे लिए दु:खदायक साबित हो सकती है? दूसरा तर्क यह है कि जो चीज़ हमारी है ही नहीं, वह हमें कैसे मिल सकती है? आप कभी अपने घर-परिवार में ही झाँक कर देखो आपका बच्चा आपसे किसी खिलौने की माँग करता है क्योंकि आप उससे प्रेम करते हैं इसलिए चाहे आपको तंगी का सामना ही क्यों न करना पड़े, आप अपने बच्चे को वह खिलौना खरीद कर देते हो। अब बात ग़ौर करने लायक यह है कि वह खिलौना जिसके लिए बच्चा अपने माँ-बाप के नाक में दम किए रहता है वह उसके लिए अधिक से अधिक एक या दो दिन ही प्रिय रहता है। फिर या तो वह टूटा फूटा एक ओर पड़ा मिलेगा या घर की किसी अलमारी में सजावट का काम करता हुआ दिखाई देगा और बच्चा जो उसके पीछे ज़िद करता था अब दूसरी चीज़ के पीछे ज़िद करता हुआ मिल जाएगा। इसी संदर्भ में आप स्वयं को ही रख कर देखिए। आप बस में सफर करते हो तो बाहर दुपहिया पर चलते लोगों को देख कर सोचते हो कि काश! हमारे पास भी दुपहिया हो, न बस का भीड़ भड़क्का होगा और न इंतज़ार। चलो ईश्वर की कृपा हुई आपको दुपहिया वाहन मिल गया। अब आप

दुपहिया वाहन को नहीं बल्कि कार की ओर देखते हो। कार वाले की नज़र बड़ी कार वाले पर होती है। इसी मृग-तृष्णा में हम सदैव दुखी रहते हैं। क्या आपने कभी इस पर विचार किया है कि यह हमारे साथ क्यों होता है? एक सुख की कामना करके जब हम उसे प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तो वही सुख धीरे धीरे दु:ख में परिवर्तित हो जाता है। यदि सुख को अंतत: दु:ख ही बनना है तो उसके पीछे अपना समय गँवाने से क्या लाभ? ये बातें जानते तो सभी हैं परन्तु किसी दूसरे के साथ संलग्न करके ही देखना चाहते हैं अपने ऊपर इन्हें घटित होता कोई नहीं देखना चाहता। हुजूर इसी बारे में कहा करते थे कि अपने दु:ख से दु:खी कोई नहीं है अपितु दूसरे के सुख से दु:खी हर कोई है।

यही माया है, मन का जाल है जिसमें फांस कर काल हमें हमारे असली मकसद से सदा से रोकता आया है। इसी माया जाल को काटने में मदद करने के लिए युगों-युगों से युगपुरुष, सन्त-महात्मा, पीर-फकीर हमें प्रेरित करते आए हैं। प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ में मन को साधने के लिए मन को बस में करने के लिए प्रेरणादायक प्रसंग मिल जाते हैं परन्तु मंज़िल तक वही पहुँचता है जो उठकर चल देता है। जब तक उठकर चलोगे नहीं रास्ता कैसे कटेगा? भक्त कबीर साहिब जी अपनी वाणी में फर्मान कर रहे हैं:-

माया छाया एक सी बिरला जानै कोय,
भगता के पीछे फिरै सनमुख भागै सोय।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

अर्थात् माया छाया की ही भाँति है जो इसकी तरफ पीठ कर लेता

है यह उसके पीछे भागती है और जो इसकी ओर मुँह कर लेता है यह फिर उसे अपने पीछे दौड़ाती है। यही कारण है कि साधारण सांसारिक जीव सारी आयु इसके पीछे भागता रहता है परन्तु यह उसके हाथ नहीं आती परन्तु जो इससे विमुख हो जाता है यह उसके पीछे-पीछे भागने लगती है।

तो सर्वप्रथम जरूरत इस बात की है कि हम यह मनन करें कि क्या हमें अनंत काल तक दु:खों के चक्रव्यूह में फँस कर अपनी तकदीर को या ईश्वर को ही दोष देना है या उस परम आनन्द की खोज में निकलना है जिसके बारे में महापुरुष हमें बार बार समझाते आए हैं। बहुत पुरानी बात है जब दास हुजूर की शरणागत् नहीं था किसी ज्ञानी जन ने दास से कहा था कि शिव-महापुराण में एक ऐसा मन्त्र दर्ज है जिसे लगभग एक नीयत संख्या तक लगातार जपने से मनुष्य की प्रत्येक इच्छा पूर्ण हो जाती है परन्तु मज़े की बात तो यह है कि जब कोई उसे निर्धारित संख्या तक जपने में कामयाब हो जाता है तो उसकी सम्पूर्ण इच्छाएँ ही खत्म हो जाती हैं। इच्छाएँ होंगी तो ही पूर्ण करने की जरूरत रहेगी। इच्छाओं का समूल नष्ट होना ही वास्तव में इच्छाओं का पूर्ण हो जाना है। आज लगभग पैंतीस साल बाद जब हुजूर दास से इस पुस्तक पर कार्य करवा रहें हैं तो वह बात याद आती है। उस समय तो समझ में न आई थी परन्तु उसका मर्म अब समझ में आता है।

हमारे समस्त दु:खों का कारण यही इच्छाएँ हैं जो एक के बाद एक नया रुप लेकर हमें उलझाए रखती हैं और हम अपने असली मार्ग से भटक कर केवल गोल गोल घूमते रहते हैं और अन्त में पता यह चलता है कि चले तो बहुत परन्तु फासला अभी उतना ही है।

चलते-चलते शरीर नष्ट हो जाता है परन्तु इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं। इसलिए जिज्ञासु जीवों को समस्त इच्छाओं के जनक इस मन के बारे में जानने की कोशिश करनी चाहिए कि यह कैसे काम करता है? कैसे हमें भ्रमित करता है और इसे वश में कैसे किया जा सकता है? यह प्रश्न तो लाख टके का है।

माई मनु मेरो बसि नाही

नवम् पातशाह श्री गुरु तेग़ बहादुर साहिब कहते हैं:-

"माई मनु मेरो बसि नाही।।
निसि बासुर बिखिअन कऊ धावतु किह बिधि रोकऊ ताहि।।
बेद पुरान सिमृति को मतु सुनि निमख न हीए बसावै।।
परधन परदारा सिऊ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै।।

(आदि ग्रन्थ, अंग- ६३२-३३)

गुरु साहिब कह रहे हैं कि हे माँ! मेरा मन मेरे वश में नहीं है। दिन-रात व्यर्थ के आडंबरों में उलझा रहता है, इसे कैसे रोकूं समझ में नहीं आता। रोज़ वेद-पुराणों, स्मृतियों को सुनकर भी इस पर कोई असर नहीं है। पराये धन व पराई स्त्री की चाह में उलझा कर यह हमारा जन्म व्यर्थ ही गँवा रहा है।

हुजूर कहते हैं कि इस मन को वश में करने के लिए सर्वप्रथम इसे समझना परम आवश्यक है। तृतीय पातशाह श्री गुरु अमरदास जी महाराज फर्माते हैं:-

"इहु मनु गिरही कि इहु मनु उदासी।।
कि इहु मनु अवरनु सदा अबिनासी।।
कि इहु मनु चंचलु कि इहु मनु बैरागी।।
इसु मन कऊ ममता किथहु लागी।।
पंडित इसु मन का करहु बीचार।।
अवरु कि बहुता पढहि उठावहि भार।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-१२६१)

गुरु साहिब मन के बारे में खोजबीन करने की प्रेरणा देते हैं कि हे पण्डित! जरा इस बात पर विचार करो कि यह मन गृहस्थ है या त्यागी? क्या यह मन जाति पाति या रंग रुप से रहित है? यह मन चंचल है या वैरागी है? इस मन को ममता का मोह कब लगा? यदि इस मर्म को तुम समझ जाओ तो और कोई पढ़ाई करने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि यह मर्म समझ में नहीं आया तो बाकी सब पढ़ाइयाँ करना मात्र बोझ उठाने के बराबर है। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार का बाकी सब ज्ञान मिथ्या है केवल उस परम पिता का ज्ञान ही एक ऐसा ज्ञान है जिसे पा कर एक निरक्षर भी परम ज्ञानी हो जाता है। भक्त कबीर साहिब तो और भी स्पष्ट तौर पर समझा रहे हैं :-

मन गोरख मन गोबिन्दा मनहीं औघड़ सोय,

जो मन राखै जतन करि आपै करता होय।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-पहला)

कि मन ही गोरख मुनि है और मन ही गोविंद है। जो भी इस मन को यत्न से बांध लेता है वह स्वयं ईश्वर हो जाता है। कहा जाता है कि जो जितना ज्ञानी है उसे अपने अंतर के अज्ञान का उतना ही पता है। जिसने अपने अंतर के अज्ञान को पहचान लिया वह परम पण्डित है। चाहे सांसारिक तौर पर वह निरक्षर ही क्यों न हो। जिसने अपने अंतर के अज्ञान को न पहचाना वह चारों वेदों का ज्ञाता होते हुए भी अज्ञानी ही है। भक्त कबीर दास जी, भक्त रविदास जी निम्न जाति में पैदा हुए। उन दिनों निम्न जाति के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं हुआ करता था परन्तु आज उन्हीं की

वाणी पर विद्वान रिसर्च करके डिग्री हासिल करते हैं। दूसरे अर्थों में, जिसने अपने अंतर के अन्धकार को पहचान लिया वह अन्धा होते हुए भी सजग है, जागृत है। जिसने अपने अंतर के अन्धकार को न पहचाना वह दो आँखें होते हुए भी सुप्त है, अन्धा है। विभिन्न युग-पुरुषों की वाणी को देखें तो हम उन्हें स्वयं को निराधम कहता हुए ही पाएँगे। निम्नलिखित श्लोक पढ़ कर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि जिनके श्री मुख से यह वाणी निकली वे कितने परम ज्ञानी व जागृत पुरुष थे:-

"सगल धरत तुमारी राम जीओ हम भेओ कीट पतंगा।।

(यशवन्ती निराधार धाम-पहला)

"हम मैले तुम ऊजल करते हम निरगुन तू दाता।।
हम मूरख तुम चतुर सिआणे तू सरब कला का गिआता।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-६१३)

जो कछु किया साहिब किया मै कछु कीया नाहिं,
कहौं कहीं जो मैं किया तुमही थे मुझ माहिं।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

दूसरी ओर भक्त रविदास जी कहते हैं:-

"माधऊ सतसंगति सरनि तुमारी।।
हम अउगन तुम उपकारी।।"

बड़े बड़े युग पुरुषों ने स्वयं को मूर्ख, अज्ञानी व अवगुणी कहने से भी परहेज़ नहीं किया। कहने का अर्थ यह है कि ज्ञानी वह नहीं है जिसने वेद ग्रन्थ कंठस्थ किए हैं अपितु वह है जो अपने अंतर के अज्ञान को पहचान गया है। गुरु अमरदास जी महाराज प्रेरणा देते है:-

माई मनु मेरो बसि नाही

"इसु मन कउ कोई खोजहु भाई।।

मनु खोजत नामु नउनिधि पाई।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-११२८-२९)

इसी बारे में भक्त कबीर दास जी भी कहते हैं:-

"इसु मनु कउ कोई खोजहु भाई।।

तन छूटे मनु कहा समाई।।

इस मन का कोई जानै भेओ।।

इह मनि लीण भये सुखदेओ।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-३३०)

उनके अनुसार जो इस मन की खोज करता है वही नाम की दौलत पाता है। उन्होंने इस मन की खोजबीन करने का ही मार्ग सुझाया है कि भाई इस मन की खोज करो कि तन के बंधन से छूट कर यह मन कहाँ जाता है और जिसने भी इस मन के भेद को पा लिया है वह परम तत्व में लीन हो गया। इसी मन के द्वारा ही ऋषि शुकदेव परम तत्व में लीन हो गए। भक्त कबीर साहिब जी ने तो मन के निवास स्थान के बारे में इस श्लोक में साफ़ तौर पर कहा है:-

"इहु मनु सकती इहु मनु सीओ।।

इहु मनु पंच तत को जीओ।।

इहु मनु ले जओ उनमनि रहै।।

तउ तीनि लोक की बाज तै कहै।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-३४२)

अर्थात् यह मन आसक्त है तो चेतन भी है। यह मन पाँच तत्व के पुतले का जीवन भी है। जो इस मन का आरोहण (अर्थात् ऊपरी मण्डलों की ओर चढ़ाई) करवाने में सफल रहता है वह तीनों लोकों का भेद जान जाता है। तीनों लोकों में होने वाली कोई भी घटना उससे छुपती नहीं है।

जितने भी सन्त-महात्मा, पीर-फकीर इस धरती पर अवतरित हुए हैं उनका कहना यही है कि मन का जन्म तभी हुआ जब इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक जन्म में मन की गिरह आत्मा के साथ बँधी रहती है। दास का ऐसा मानना है कि मन का आत्मा के साथ गिरह बाँध कर रखने का एक सीधा सा औचित्य यही है कि केवल आत्मा के माध्यम से ही मन अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच सकता है। यह बंधन ठीक उसी तरह है जैसे बेलें बढ़ने के लिए सहारा चाहती हैं। जैसे ही उन्हें सहारा मिल जाए वह उससे लिपट कर बढ़ती ही चली जाती हैं। चाहे उनकी जड़ें पृथ्वी में ही होती हैं परन्तु सूर्य की रोशनी के लिए वह दूसरे पौधों को साधन के रूप में प्रयोग करते हुए उससे लिपट कर निरन्तर बढ़ती रहती हैं। हुजूर महाराज जी ने अपने प्रवचनों द्वारा यही कहा है कि मन कोई छोटी मोटी शक्ति नहीं है अपितु ब्रह्मा का अंश है और तीसरे घर का स्वामी है। इस नश्वर संसार का प्रसार केवल तीन घरों तक ही सीमित है जबकि आत्मा का सम्बन्ध चौथे घर से है, परम पिता परमात्मा से है जोकि समय और होनी से परे है। अपने स्रोत तक पहुँचने के लिए मन आत्मा के साथ गाँठ बाँध कर रखता है ताकि आत्मा का आरोहण हो तो वह भी अपने घर तक पहुँच पाए। गुरु अमरदास जी महाराज फर्मान करते हैं:-

"मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।।
मूलु पछाणहि ता सहु जाणहि मरण जीवण की सोझी होई।।
गुरपरसादी एको जाणहि ता दूजा भाओ न होई।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-४४१)

गुरु साहिब मन को झकझोर रहे हैं कि हे मन! तुम अपने आपको पहचानो कि तुम किसका अंश हो? क्यों व्यर्थ के प्रपंचों में फंसे हो? परम पिता सदैव तुम्हारे साथ है इसलिए किसी गुरु की शरण ले, मति ले और आनन्द के सागर में गोते लगा। यदि तुम्हे अपने स्रोत के बारे में पता चल जाएगा तो जीवन-मृत्यु का भेद व भय समाप्त हो जाएगा। गुरु कृपा से जब तुम उस एक को जान लोगे तो मिथ्या के साथ प्रेमालाप समाप्त हो जाएगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि मन इस संसार की रचना का दायित्व निभाने वाले ब्रह्मा का अंश है तो फिर यह इतना मलीन कैसे हो गया? इस नश्वर संसार में जो भी जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। जो बना है वह एक दिन मिट जाएगा इसीलिए इस संसार को मृत्युलोक भी कहा जाता है। काल अथवा समय का प्रभाव इस संसार पर सबसे अधिक है और मन पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि यह अपना असली स्वरूप भूलकर सांसारिक बुराईयों में फँस जाता है। यदि विचार किया जाए कि यह शरीर क्या है? यह शरीर आत्मा का बाहरी आवरण मात्र है जो आत्मा को कर्मों के फलानुसार कुछ समय के लिए मिला है। यह शरीर कोई भी हो सकता है, कुत्ते का, घोड़े का, बैल का, कबूतर का, चींटी का या फिर मानव का। इसका निर्धारण कर्मों के फलस्वरूप होता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं:-

"करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरू।।"

(जपुजी साहिब)

कि आत्मा को यह शरीर कर्मों के हिसाब से मिलता है और आत्मा के मोक्ष का आधार केवल गुरु की कृपा ही है। यह शरीर जीवित है आत्मा के कारण परन्तु मज़े की बात यह है कि इसका चालक मन है। कभी इस पर विचार करें कि सन्त-महात्माओं ने केवल मन को ही प्रेरणा दी है, मन को ही समझाया है कभी आत्मा को नहीं चेताया क्योंकि आत्मा तो अद्वैत है, अविनाशी है परन्तु मन द्वैत है। सदैव ही दो पहलू बना कर चलता है। हाँ-नहीं, अच्छा-बुरा इत्यादि। यह दो का भाव मन की ही उपज है आत्मा की नहीं। किसी एक पर टिक कर रहना मन की आदत नहीं है क्योंकि यह स्वभाव से चंचल है। किसी एक के साथ अधिक समय तक मन टिक नहीं सकता। कोई एक वस्तु इसे प्राप्त हो जाए तो बहुत जल्दी यह उससे ऊब जाता है। उसे त्याग कर यह फिर से दूसरी के पीछे भागने लगता है। नित्य प्रति नए-नए आविष्कार करना इसका स्वभाव है। अभी यह सुना तो कहा कि बात तो सही है, दूसरे ही पल दूसरी बात सुनी तो उसी ओर पलट जाता है। इसी द्वैत की भावना के कारण ही यह काल के वश में है। पाप भी यही करता है और पुण्य भी यही करता है। मनुष्य को ईश्वरीय मार्ग से भटकाने वाला यदि मन है तो नाम जपाने वाला भी यही है। ईश्वर के अंश आत्मा के साथ रहने के बावजूद यह अपने स्वभाव के कारण स्वयं को कर्ता मान बैठता है जबकि होता यह काल के वश में ही है। इसका किया हुआ सब अच्छा या बुरा आत्मा एक नीरीह व मूक दर्शक बन कर देखती रहती है।

मन के सही मार्ग पर आने का इंतज़ार यह आत्मा जन्मों से कर रही है जबकि जन्म दर जन्म यह मन निम्न स्तर पर गिरता जा रहा है।

हुजूर महाराज दर्शन दास जी कहा करते थे कि आत्मा और परमात्मा के बीच यह मन दीवार बन कर खड़ा है। आत्मा और परमात्मा के मिलन के बीच यह मन सबसे बड़ी रुकावट है क्योंकि यह काल की चँगुल में है। जब तक यह काल के वश में है इसके सब कार्य नकारात्मक हैं परन्तु जब इसे अपने स्रोत का बोध होता है तो इस जैसा सकारात्मक और कोई नहीं हो सकता। यदि ईश्वर के नाम की धुन इस पर सवार हो जाए तो आत्मा और परमात्मा के मिलन में यही सबसे बड़ा सहायक सिद्ध होता है इसीलिए साईं बुल्लेशाह कहते हैं:-

"रब्ब दा की पाणा, इधरों पट्टणा उधर लाणा।।"

कि ईश्वर की प्राप्ति बहुत सरल है बस मन को संसार से हटा कर ईश्वर की ओर लगाने भर की देर है परन्तु यह परिवर्तन ही सबसे दुर्गम कार्य है। भक्त कबीर साहिब जी कहते हैं कि मन तो एक ही है अब चाहे इसे गुरु की भक्ति में लगा दें या विषय विकारों में।

कबीर मन तो एक है भावै तहां लगाय,

भावै गुरु की भक्ति कर भावै विषय कमाय।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

बड़े बड़े तपस्वी, ऋषि-मुनि युगों की तपस्या के बाद भी मन के चँगुल से निकल नहीं पाए। यहाँ तक कि देवी-देवता भी इसके असर से अछूते नहीं हैं।

हुजूर महाराज दर्शन दास जी अपने सत्संगों में अक्सर कहा करते थे कि जब इस सृष्टि की रचना ईश्वर ने की तो इसे चलाने के लिए काल की रचना भी की। सृष्टि चक्र चलाने के लिए काल को कुछ रुहें भी दी गईं। बदले में काल ने ईश्वर से दो वरदान माँगे। पहला यह कि वह रुहों को जिस योनि में, जिस हाल में रखे वह खुश रहें और दूसरा यह कि कोई भी आत्मा अपने आप काल के चँगुल से मुक्त न हो पाए। इस सृष्टि चक्र व चौरासी लाख योनियों के चक्र को चलाते रहने के लिए काल को आत्माओं की जरूरत है इसीलिए वह अपने अधीन आत्माओं को सदा संसार में ही उलझा कर रखना चाहता है। इसलिए उसने आत्मा के साथ मन को बाँध दिया और साथ में बाँध दिए पाँच चोर या पाँच एजेंट अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार। अब आत्मा क्योंकि परमात्मा का अंश है इसलिए ईश्वर के प्रति उसका खिंचाव, ललक स्वभाविक है। वह ईश्वर के विरह में वेदन करती है जिसे हम सांसारिक कोलाहल के कारण सुन नहीं पाते। कई जिज्ञासु यह पूछते हैं कि आत्मा का चीत्कार, आत्मा का वेदन क्या है? आप कभी महसूस करो कि कोई दिन ऐसा आता है कि आपको उदासी घेरे रहती है। उदासी का कारण क्या है यह आपको समझ नहीं आता। सब कुछ होते हुए भी आप अपने आपको इस संसार में एकाकी महसूस करते हैं। यही आत्मा का चीत्कार है, करूण पुकार है, ईश्वर के प्रति आत्मा की तड़प है, वैराग्य है। आत्मा जितनी अधिक बलवान होगी उतना ही यह चीत्कार प्रबल होता है। ईश्वरीय मार्ग के अनुयाइयों पर यह अवस्था बहुत जल्दी आती है और ठहर सी जाती है परन्तु साधारण सांसारिक मानव को यह अवस्था काफी देर बाद स्पंदित करती है और वह उसे समझने में प्रायः नाकाम रहता है।

इसका कारण यह है कि मन व इसके पाँच एजेंट मानव को ऐसा उलझा कर रखते हैं कि इस अवस्था का लाभ मानव को नहीं मिल पाता और वह प्रेरित होकर आत्म साक्षात्कार नहीं कर पाता। आत्मा की इसी करुण पुकार पर ईश्वर स्वयं सन्त-महात्माओं का रूप धारण कर बार बार इस मृत्युलोक पर अवतरित होता है। साधारण मानव की तरह ही क्रिया-कलाप करते हुए जीवन बिताते हुए भी इस संसार व मन की माया से विरक्त रहता है और मानव को आत्मा की पुकार सुनने व उसका कष्ट निवारण करने की प्रेरणा देता है। ऐसा नहीं है कि उनके प्रेरक प्रसंगों का हम पर असर नहीं होता। असर तो होता है परन्तु क्षणिक। जब तक हम उनकी संगति में होते हैं तब तक हमें तड़प महसूस होती है परन्तु जैसे ही हम फिर से अपने घर परिवार में लौटते हैं काल हम पर फिर से भारी पड़ना शुरु हो जाता है और हम आत्मा की पुकार को अनसुना कर एक नहीं तो दूसरे, दूसरे नहीं तो तीसरे एजेंट की चँगुल में ऐसा फंसते हैं कि देखते ही देखते हमारी आयु निकल जाती है और हम अपने आपको ऐसे द्वार के मुहाने पर पाते हैं जहाँ योनियों का अथाह सागर हमें लीलने को तैयार होता है और हम चौरासी के चक्कर में जाने को मजबूर हो जाते हैं।

यही कारण है कि सन्त-महात्मा हमें बार बार संगत में आने के लिए प्रेरणा देते हैं कि सत्संग सुनो, कीर्तन सुनो, सेवा करो इत्यादि क्योंकि एक ही काम बार-बार करने से वह आदत बन जाती है। कहा गया है:-

"करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान,
रसरी आवत जावत ते सिल पर परत निसान।"

जैसे कुएँ से पानी निकालते समय बार-बार रस्सी घिसटने से

पत्थर पर भी निशान पड़ जाते हैं उसी प्रकार बार-बार अभ्यास करने से मूढ़मति ज्ञानी हो जाता है इसीलिए बार-बार साध-संगत करने से मन की आदतें भी प्रभावित होती हैं और एक दिन यह परिवर्तित हो कर सही मार्ग पर चल पड़ता है। सन्त-महापुरुष क्योंकि काल के प्रभाव में नहीं होते इस कारण उनकी संगति हम पर व हमारे मन पर छाप छोड़ती है इसीलिए बार बार हमें साध-संगत में जाने के लिए सन्त-महात्मा प्रेरित करते हैं। इस संदर्भ में एक कथानक याद आता है। बात द्वापर युग की है। श्री कृष्ण की रानियों को पता चला कि ऋषि दुर्वासा द्वारिका के पास यमुना के तट पर आ कर ठहरे हैं। उनके मन में विचार आया कि ऋषि दुर्वासा बहुत ही क्रोधी स्वभाव के हैं यदि उनका यथायोग्य स्वागत न किया गया तो कहीं ऐसा न हो कि क्रोधित हो कर वह कोई श्राप दे दें। आपस में विचार विमर्श करने के बाद उन्होंने तय किया कि अपने हाथों से भोजन बना कर ऋषि दुर्वासा को भोजन करवाया जाए।

सभी रानियों ने अपने हाथों से नाना प्रकार के व्यंजन तैयार किए और तैयार भोजन लेकर चल पड़ीं। जब वे यमुना के किनारे पर पहुँचीं तो देखा कि यमुना अपने उफान पर है और उसका वेग भी बहुत अधिक है जिस कारण उसमें नाव भी नहीं उतारी जा सकती थी। काफी समय प्रतीक्षा करने के बाद भी जब स्थिति न सुधरी तो उन्होंने श्री कृष्ण जी को सारी बात कह सुनाई और निवेदन किया कि प्रभु आप ही इसका कोई हल बताएं। प्रभु ने अपनी रानियों से कहा कि आप सब यमुना के तट पर जाकर सर्वप्रथम उसे प्रणाम करें। फिर विनम्र निवेदन करें और वास्ता दें कि यदि हमारा कृष्ण

बाल ब्रह्मचारी है तो हमें रास्ता दे दें। अब सब के मन में शंका की फांस गड़ गई कि कोई गृहस्थ बाल ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है? और वह भी कृष्ण जैसा रास रचैया? परन्तु आदेश मानने के सिवा उनके पास और कोई चारा न था। दिल में शंका और मुख मंडल पर व्यंग भरी मुस्कान लिए तमाम रानियाँ यमुना जी के तट पर जा पहुँचीं। जैसा श्री कृष्ण महाराज जी ने कहा था उन्होंने वैसा ही किया। जैसे ही उन्होंने प्रार्थना की, यमुना जी ने रास्ता दे दिया और तमाम रानियाँ दंग रह गईं।

यमुना पार कर वे सब ऋषि के पास पहुँची और प्रणाम करके उन्हें श्रद्धा के साथ भोजन करवाया। अब दूसरा कौतुक यह हुआ कि ऋषि दुर्वासा सौ आदमियों के लिए पर्याप्त भोजन सामग्री अकेले ही खा गए। पूर्ण आदर सत्कार करने के बाद रानियों ने ऋषि दुर्वासा से आशीर्वाद लिया व वापस यमुना जी के किनारे आ पहुँचीं। यमुना जी के तट पर पहुँच कर उन्होंने स्थिति को यथावत् पाया। रानियों ने फिर से श्री कृष्ण के कहे कथन का वास्ता दिया परन्तु यमुना जी ने रास्ता न दिया। अब सभी रानियाँ ऋषि दुर्वासा के पास पहुँचीं और कहा कि यमुना जी अपने उफान पर हैं इसलिए हम वापस नहीं जा सकतीं। आप कृपा करें व इसका हल निकालें। ऋषि दुर्वासा ने पूछा कि जब यमुना जी उफान पर हैं तो आप सब मुझ तक कैसे पहुँचीं? इस पर उन्होंने ऋषि दुर्वासा को पूरा हाल कह सुनाया कि हमने यमुना जी को श्री कृष्ण के बाल ब्रह्मचर्य का वास्ता दिया था तभी हमें यमुना माँ ने रास्ता दिया था।

यह सुन कर ऋषि दुर्वासा सारा मर्म समझ गए व मुस्कुराते हुए

कहने लगे कि अब आप मेरी ओर हो इसलिए यमुना जी को मेरे कथन का वास्ता देना पड़ेगा तभी रास्ता मिलेगा। आप यमुना जी से कहिए कि यदि ऋषि दुर्वासा पवन-आहारी है तो हमें रास्ता दीजिए। यह सुन कर सभी रानियाँ असमंजस में पड़ गईं कि जो आदमी सौ लोगों का भोजन अकेले ही खा जाए वह भला पवन-आहारी कैसे हो सकता है? और कोई रास्ता न था सो तमाम रानियाँ फिर से यमुना जी के तट पर पहुँचीं और विनयपूर्वक ऋषि दुर्वासा का कथन दोहराया। अब उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि यमुना जी ने सचमुच रास्ता दे दिया। आश्चर्यचकित रानियाँ वापस महलों में पहुँचीं और सारा हाल श्री कृष्ण को कह सुनाया और शंका का निवारण करने का आग्रह किया।

इस पर श्री कृष्ण ने कहा कि मैं बाल ब्रह्मचारी इसलिए हूँ क्योंकि आपके साथ विवाह व आपसे कामातुर सम्बन्ध मेरी अपनी इच्छा नहीं अपितु आपकी इच्छा का फल है। मैं क्योंकि काल के दायरे से बाहर हूँ इसलिए काम मुझे छू भी नहीं पाता। जो भी सम्बन्ध मेरा आपके साथ है वह इस शरीर का है मेरा नहीं। अंतरंग क्षणों में आपके निकट यह शरीर ही रहता है, कामेच्छा में यह शरीर रत रहता है मैं नहीं। मैं तो मात्र दृष्टा हूँ कर्ता नहीं। ठीक इसी प्रकार आपने ऋषि दुर्वासा को जो भोजन करवाया वह आपकी इच्छा थी ऋषि दुर्वासा की नहीं। वह तो कुछ समय पूर्व ही यहाँ पधारे हैं। इससे पूर्व तो वे वनों में घोर तपस्या में लीन थे तब वहाँ उन्हे भोजन कौन करवाता था? आज आपने उन्हे भोजन करवा दिया है, भविष्य

में कौन करवाएगा? उन्होने भोजन इसलिए किया कि इसमें आपका स्नेह छिपा था, श्रद्धा छिपी थी जिसका निरादर करना पाप था इसलिए आपकी इच्छा का मान रखते हुए उन्होंने भोजन किया और वैसे भी भोजन तो शरीर की खुराक है प्राण की नहीं, चेतना की नहीं। भोजन उन्होने किया अवश्य परन्तु केवल शारीरिक तौर पर, आत्मिक तौर पर तो वे पवन-आहारी हैं।

इस कथानक का अर्थ यही है कि सन्त-महात्मा जो कुछ भी इस संसार में आ कर करते हैं वह एक दृष्टा की भाँति करते हैं उन कार्यों में आत्मिक तौर पर संलिप्त नहीं होते। काल की परिधि से वे बाहर रहते हैं। इसी कारण सांसारिक लिप्तता उनको छू भी नहीं पाती। इस बारे में भक्त कबीर दास जी का कथन है:-

"चदरिया झीनी रे झीनी।।

दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, जियूं की तियूं धर दीनी।।"

भावार्थ कि साधारण मानव इस शरीर रुपी चादर को ओढ़ कर पाप कर्म कमा कर इसे कलंकित ही करता है, दूषित ही करता है परन्तु महापुरुष इसे ज्यों का त्यों ही उतार देते हैं। उन्हे चौरासी के चक्कर में नहीं घूमना पड़ता। वे तो अपनी इच्छानुसार ही शरीर धारण करते हैं और इच्छानुसार ही शरीर का त्याग कर देते हैं। उनके लिए यह शरीर मात्र आवरण ही होता है जिसे वह अपनी इच्छानुसार बदल लेते हैं। इस बारे में हुजूर कहा करते थे कि

❖❖❖❖

बंदे सुपने जिओ संसार है

मन को समझने से पहले मन की कार्य-विधि को समझना बहुत जरूरी है। मन ऐसा चतुर शासक है कि मनुष्य को व्यर्थ के कामों में उलझा कर रखता है ताकि आत्मा-काल के चँगुल से न निकल पाए। उन्होने मनुष्य को फंसा कर रखने के लिए एक काल्पनिक संसार का निर्माण किया है जिसे हम यथार्थ मान कर अपना जीवन संवारने के लिए सही-गलत कर्म करते हुए बिना अपना लक्ष्य प्राप्त किए इस संसार से विदा हो जाते हैं। प्रत्येक सन्त-महात्मा ने अपने समय पर मानव को रह रह कर चेताया है कि यह संसार स्वप्न मात्र है और कुछ नहीं। एक दिन यह स्वप्न समाप्त होना है, टूटना ही है। जब हमारी आँख खुलेगी तो हम नितांत एकाकी होंगे। यह घर-बार, माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री, मित्र, संतान कोई भी न होगा। हम ईश्वरीय सत्ता के साथ एकदम अकेले होंगे और जब यह सपना समाप्त होना ही है तो क्यों न हम अपना जीवन रहते ही इस स्वप्न से मुक्ति प्राप्त करने की कोशिश करें और वास्तविकता को पहचानें?

साधारण जीव के लिए यह कथन भी एक स्वप्न मात्र ही है, वह इस बात पर विश्वास नहीं करता। सच तो यह है कि वह इस बात पर विश्वास करना ही नहीं चाहता। आखिर भरे पूरे संसार में अकेला कौन होना चाहता है? परन्तु सत्य तो सत्य ही है उसे झुठलाया नहीं जा सकता। यह तो ऐसा ही है जैसे एक बिल्ली कबूतर पर घात लगाए बैठी है, कबूतर भी उसे देख रहा है परन्तु बजाए इसके कि वह उड़ कर अपनी जान बचाए वह अपनी आँखें बंद कर लेता है और मान लेता है कि बिल्ली को मैंने नहीं देखा इसलिए बिल्ली ने भी मुझे

नहीं देखा होगा। इसी ग़फलत में वह बिल्ली का शिकार हो जाता है। हम सभी वास्तविकता से वाकिफ तो हैं लेकिन उस पर यकीन करना नहीं चाहते। हम अपने अंतर से सारा जीवन आँखें बंद किए रहते हैं परन्तु जो नियति है वह तो घटित होगी ही। नियति को यदि हम स्वीकार करते हैं तो केवल मजबूरी में क्योंकि और कोई चारा नहीं है खुशी से नियति को स्वीकार करते हैं केवल सन्त-महात्मा क्योंकि वे इस स्वप्न से जाग चुके होते हैं। उनके लिए यह चोला धारण करना व छोड़ना मात्र वैसा ही है जैसे हम नित्य प्रति कपड़े बदलते हैं।

पलटू रहना है नही सुपना यह संसार,
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार।।
(वाणी पलटू साहिब)

बात फिर वहीं है कि यह संसार स्वप्न मात्र है। जो कुछ भी हम करते हैं, जो कुछ भी हम देखते हैं सब कुछ सपना ही है यथार्थ नहीं। हम लगातार स्वप्न में ही जी रहे हैं। केवल रात में ही नहीं अपितु दिन में भी खुली आँखों से स्वप्न देखते हैं। जो लोग अध्यात्म में विश्वास नहीं रखते उनके लिए यह विश्वास करना कठिन ही नहीं अपितु असंभव सा है कि हम स्वप्न लोक में जी रहे हैं या हम जागते हुए भी स्वप्न ही देख रहे हैं। इसके लिए एक छोटा सा प्रयोग किया जा सकता है कि दिन के समय में किसी एकांत, शान्त स्थान पर बैठकर या लेट कर आँखें बंद कर लें और शरीर को ढ़ीला छोड़ दें, शिथिल अवस्था में छोड़ दें। कुछ देर बाद हमें महसूस होगा कि हमारे अंतर में कहीं गहरे में एक स्वप्न चल रहा है। निरन्तर यह स्वप्न चल रहा है बंद नहीं होता। बस हमारे दैनिक कामकाज की वजह से यह मात्र दब सा जाता है। ठीक वैसे ही जैसे दिन के समय सूर्य के

प्रकाश में तारे दिखाई नहीं देते परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि दिन के समय तारे होते ही नहीं हैं। तारे तो अपनी जगह पर ही रहते हैं परन्तु उनका प्रकाश सूर्य के तीव्र प्रकाश में दब जाता है और सूर्यास्त होते ही वह फिर से हमें आकाश में ही यथावत् स्थान पर टिमटिमाते दिखाई देने लगते हैं। दिन के समय भी यदि हम धरती से कुछ दूर अंतरिक्ष में चले जाएं तो यह तारे हमें फिर से दिखाई देने लगेंगे।

ठीक यही बात सपनों के साथ भी लागू होती है। ऐसा नहीं है कि हम केवल रात में ही सपने देखते हैं, नींद में ही सपने देखते हैं। नींद में सपने इसलिए दिखाई देते हैं क्योंकि उस समय दिन का कार्य-कलाप बंद रहता है, कोलाहल शान्त होता है। दिन के समय का कोलाहल व हमारा दैनिक कार्यकलाप इन सपनों को दबा मात्र देता है वास्तव में स्वप्न हमारे गहरे अन्तर्मन में चालू रहता है। यह एक सतत् क्रिया है, निरन्तर क्रिया है। अब प्रश्न यह है कि यदि हमारे अंतर में निरंतर स्वप्न चालू है तो हम स्वयं को जागृत कैसे कह सकते हैं? वास्तव में यदि स्वप्न क्रिया निरन्तर चल रही है तो इसका अर्थ यह है कि हम जगे हुए नहीं हैं अपितु सोए हुए हैं रात में कुछ अधिक और दिन में कुछ कम। असल में स्वप्न हमारी चेतना पर एक पर्दा सा डाल देता है जिस कारण हम इसे यथार्थ ही मान लेते हैं और स्वयं को जागृत महसूस करते हैं परन्तु वास्तव में हम गहरी निद्रा में हैं। रात को नींद में सपना देखना महज़ ऐसा है जैसे सपने में सपना देखना।

ठीक इसके विपरीत यदि हमारे अंतर में स्वप्न नहीं चल रहा है या हम सपना नहीं देख रहे हैं तो हम जागृत कहे जा सकते हैं। सन्त-महात्मा जागृत पुरुष होते हैं। अब प्रश्न यह है कि यह जागृत

होना असल में क्या है? जागरण की अवस्था क्या है? कम शब्दों में इसका अर्थ यह है कि जागरण हमारी अंतर की स्वप्न क्रिया का विसर्जन है। जैसे आकाश तो है परन्तु तारे नहीं हैं केवल विशुद्ध आकाश है, निर्मल आकाश है, और यह विशुद्धता, निर्मलता व स्वप्न रहित चेतना ही वास्तव में जागरण कहलाता है। इसी कारण सन्त-महात्मा अपने उपदेशों में मानव को मन की शुद्धि करने को प्रेरित करते आए हैं। मन एक बार शुद्ध हो गया, जागृत हो गया तो यह गंभीर हो जाता है, चंचलता भूल जाता है और मनुष्य जान जाता है कि वह जो कुछ भी कर रहा है सब व्यर्थ है। जैसे कोई सपने में घर बनाए तो सपने के टूटने के साथ ही घर भी गायब हो जाता है।

सदियों से जागृत पुरुष, युग पुरुष चाहे वे किसी भीं समय में हुए हैं किसी भी देश में हुए हैं उनका कथन यही रहा है कि मानव ग़फलत की नींद में सो रहा है। तुलनात्मक रूप से रात में कुछ अधिक और दिन में कुछ कम परन्तु अध्यात्म के अनुसार मानव गहरी नींद में है। मिसाल के तौर पर यदि आप किसी से पूछें कि वह असल में कौन है और वह कहाँ से आया है, क्यों आया है? और वह इस का जवाब न दे पाए तो आप सोचोगे कि वह या तो पागल है, नशे में है या सोया हुआ है। अपने सांसारिक रिश्तेनातों के बारे में, क्रियाकलापों के बारे में तो आप बहुत कुछ जानते हो, विषय वस्तुओं के बारे में आपका ज्ञान बहुत है परन्तु अपने अंतर के स्वरुप के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं है। हमारा हाल तो उस मनुष्य जैसा है जो फिल्म देखने गया और फिल्म देखते-देखते उसमें इतना डूब गया कि स्वयं को उसी कहानी का एक हिस्सा मान बैठा और अपने वास्तविक जीवन के बारे में उसे कुछ याद नहीं रहा।

इस बात को ऐसे समझा जा सकता है कि जैसे आप स्वप्न में भाग रहे होते हैं, किसी से लड़ रहे होते हैं या डर जाते हैं। आपका कुछ खो जाता है और आप दु:खी होते हैं। कुछ डरावना देख कर आप चीखना चाहते हैं पर आपको ऐसा लगता है जैसे आपका गला बंद हो गया है और आप बोल नहीं पा रहे हैं। यह सब कुछ आपको यथार्थ-सा महसूस होता है। अचानक आपकी आँख खुल जाती है तो आप स्वयं को पसीने से भीगा हुआ पाते हो। फिर आपको संतोष होता है कि अरे! यह तो स्वप्न ही था, मैं तो व्यर्थ में ही डर रहा था। ऐसे ही हमारा जीवन भी है जो कुछ भी हम कर रहे हैं वह सपना मात्र ही है क्योंकि हम स्वयं के अस्तित्व की ओर से सोये हुए हैं, अपने असली लक्ष्य से अन्जान हैं। लगातार एक सपना देख रहे हैं। एक दिन यह टूटेगा और हम पाएंगे कि हम तो एक आत्मा-मात्र हैं और हमारा अपना कुछ नहीं है। हमने तो कुछ देर के लिए यह शरीर धारण किया था, रिश्ते-नाते धारण किए थे। फिल्म तो मात्र तीन घण्टे की होती है परन्तु यह स्वप्न जो हम जागृत अवस्था में अपनी खुली आँखों से देख रहे हैं वह तो जन्मों जन्मों से चल रहा है। सपनों के साथ इतने समय से जीते रहने के कारण हम उनमें इतना रम गए हैं कि यदि अचानक यह हट भी जाए तो भी हमें याद नहीं आएगा कि हम कौन हैं? क्या हैं? कहाँ से आए हैं? और हमें कहाँ जाना है?

आप एक कल्पना करें कि यदि यह सारा संसार एक दिन समाप्त हो जाए और आप स्वयं को नितांत अकेला पाएं तो यह इतना बड़ा आघात होगा कि या तो हम पागल हो जाएंगे या मर जाएंगे। ठीक इसी तरह यदि हमारी स्वप्न क्रिया एकदम थम जाए तो हम स्वयं को

बिल्कुल अकेला पाएँगे क्योंकि हमारा संसार ही समाप्त हो जाएगा। यह हमारे लिए बहुत बड़ा धक्का होगा क्योंकि यह सपना ही हमारा संसार है वरन् हम वास्तव में संसार में नहीं हैं। प्रत्येक मानव का संसार बाहरी चीज़ों से नहीं अपितु सपनों से ही बना होता है इसीलिए सन्त-महात्मा कहते हैं कि प्रत्येक आदमी अपने ही सपनों के संसार में जीता है और प्रत्येक आदमी का अपना एक अलग खुद का रचा हुआ संसार है। जिस संसार की हम बात कर रहे हैं वह एक नहीं है। भौगोलिक दृष्टि से, भौगोलिक स्तर पर संसार एक हो सकता है परन्तु अध्यात्मिक स्तर पर उतने ही संसार हैं जितने मन हैं। प्रत्येक मन ने अपना एक अलग ही संसार बना रखा है जिसमें उसने आदमी को उलझा कर रखा है। इसी स्वप्न रचित संसार से हम सारा जीवन निकल नहीं पाते और अंततः इसी में मर कर इसी में ही जन्म लेते हैं। यदि कहीं एक दिन यह स्वप्न समाप्त हो जाए तो हमारा संसार ही समाप्त हो जाएगा। नवम् पातशाह साहिब श्री गुरु तेग़ बहादुर जी वाणी में समझा रहे हैं:-

"इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा अैडानो।।
संगि तिहारै कछू न चालै ताहि कहा लपटानो।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-११८६)

गुरु साहिब कहते हैं कि हे मानव! यह जीवन, यह संसार, यह सभी सुख सुविधाएँ, रिश्ते-नाते, जगत सब कुछ सपने की तरह है तो फिर इस पर इतना अहंकार क्यों? जब तुम्हारे साथ कुछ जाना नहीं है तो फिर इसे अपने साथ लिपटाने से, इसमें लिप्त रहने से क्या लाभ? फिर कहते हैं:-

"साधो इहु तनु मिथिआ जानओ।।
या भीतरि जो रामु बसतु है साचो ताहि पछानो।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-११८६)

कि हे मानव! तुम्हारा यह तन मिथ्या है जो एक दिन मिट जाएगा परन्तु इसमें जो ईश्वर बसता है, राम बसता है केवल वही सत्य है, अटल है, अमर है। उसे पहचानो क्योंकि उसे पहचानने के लिए ही तुम्हे यह मानव देह मिली है। यदि यह अवसर तुम से चूक गया तो फिर यह अवसर नहीं मिलेगा।

कुछ पीर फकीर कयामत के दिन जागने की बात करते हैं, उठने की बात करते हैं। उनका कहने का अर्थ यही है कि आदमी कयामत अर्थात् मृत्यु के दिन ही जागता है और उसका लेखा-जोखा होता है। पूर्ण सन्त-महात्मा सदा से ही अपने प्रवचनों में इस स्वप्न से जीते जी ही जागने को प्रेरित करते हैं क्योंकि वह स्वयं इस स्वप्न की दुनिया से मुक्त होते हैं।

इसी संदर्भ में दास को हुजूर महाराज दर्शन दास जी से एक बार किया हुआ वार्तालाप याद आ रहा है। दास उन दिनों लोनी डेरे में ही रहा करता था। १५ अगस्त, जो कि हुजूर के ज्योति दिवस के रूप में मनाया जाता है, के भण्डारे की तैयारियाँ चल रही थी। उन दिनों हुजूर का दफ्तर लोनी डेरे में स्थित दरबार साहिब के नीचे हुआ करता था। मुझे याद है कि मैं और दास अनिल खुराना जी (मोती नगर वाले) हुजूर के दफ्तर में बैठे सजावट के लिए तारों और छोटे बल्बों से लड़ियाँ बना रहे थे। हुजूर कुछ समय पहले ही इंग्लैण्ड से वापस लौटे थे और साथ में वी. सी. आर. व वीडियो कैमरा ले कर

आए थे। उन दिनों इन चीज़ों का चलन बहुत कम था। रात काफी हो गई थी। हम आपस में बातें करते हुए लड़ियाँ तैयार कर रहे थे कि तभी हुजूर दफ्तर में आए। उनके साथ कुछ सेवादार और भी थे जिनके हाथों में रंगीन टी. वी. और वी. सी. आर. था। हुजूर हमारे पास ही आकर बैठ गए और टी. वी. और वी. सी. आर. पर एक कैसेट लगाने का आदेश दिया। हुजूर उस समय बहुत मस्ती में थे, आपके चेहरे से नूर सूरज की भाँति दमक रहा था। हम भी काम छोड़ कर हुजूर के साथ ही कैसेट देखने लगे। कैसेट हुजूर के इंग्लैण्ड में हुए किसी सत्संग की थी। कैसेट में हुजूरी रागी दास बलविंदर सिंह जी वाक् ले रहे थे। हुजूर ने मुझे मुखातिब हो कर कहा - बेटा टोनी (हुजूर सदा मुझे नीटू न कह कर टोनी ही कहा करते थे) हमारी चाल देखना जैसे किसी फौजी जनरल की होती है। तभी टी. वी. सक्रीन पर हुजूर वाकई किसी फौजी जनरल की तरह चलते हुए गद्दी तक पहुँचे और सत्संग करना आरम्भ कर दिया। हम लोग बैठ कर वह सत्संग देखते रहे। हुजूर बीच बीच में हमसे बातचीत भी करते रहे।

इसी दौरान दास के दिमाग़ में एक विचार बार बार कौंध रहा था कि अपने आपको टी. वी. की सक्रीन पर चलते फिरते देखना भला कैसा लगता होगा? हुजूर को अपना वीडियो देखते हुए कैसा महसूस हो रहा होगा? मैंने हुजूर को दबे स्वर में निवेदन किया कि महाराज जी, आपको अपना ही वीडियो देखते हुए क्या महसूस हो रहा है? हुजूर ने बिना कोई भाव चेहरे पर लाते हुए कहा कि कुछ भी महसूस नहीं हो रहा। हुजूर के इस जवाब से दास की उत्सुकता समाप्त न हुई। कुछ देर बाद मैंने हुजूर से दूसरा प्रश्न पूछा कि

महाराज जी, जब आपको रुहानी ताकत मिली थी तब आपको कैसा महसूस हुआ था? हुजूर ने कनखियों से मेरी ओर देखा और काफी देर के बाद कहा कि जब हमें अपने मालिक के दर्शन हुए थे और यह ड्यूटी मिली थी तो हमें ऐसा लगा था कि हम इस संसार में बिल्कुल अकेले हैं, हमारे सिवा और कुछ भी नहीं है। हुजूर के उस कथन का मर्म उस समय तो दास की समझ में न आया परन्तु आज जब हुजूर मुझसे इस पुस्तक पर काम करवा रहे हैं और यह संदर्भ आया है तो दास के अंतर में हुजूर का वह कथन बार बार कौंध रहा है और यह भी समझ में आ रहा है कि हुजूर के कहने का अर्थ क्या था।

वास्तव में हम लोग सपनों की दुनिया में जन्मों-जन्मों से रहने के कारण इन्हीं के साथ जीने के आदी हो गए हैं। सच तो यह है कि हम इसी दुनिया को सच मान बैठे हैं और जो वास्तव में सत्य है उसे सपना मात्र मानकर भूले बैठे हैं। सत्य का सामना करने की हमारे अन्दर हिम्मत ही नहीं है। हम सपनों के साथ ही जीना चाहते हैं क्योंकि यही हमें अच्छे लगते हैं। भला कौन किसी एकान्त स्थान पर जीवन बिताना चाहेगा जहाँ उसके सिवा और कुछ भी न हो? हमारे लिए यही सपनों का संसार यथार्थ बन गया है। हम सोचते हैं और भयभीत होते हैं कि यदि हमारे सपनों का संसार समाप्त हो गया तो कहीं हम मर न जाएँ, पागल न हो जाएँ। यही कारण है कि हम चाह कर भी मन द्वारा रचित इस स्वप्नलोक से बाहर आना नहीं चाहते। आत्मिक जागरण का जो मार्ग सन्त-महात्मा हमें दिखा कर उस पर चलने को प्रेरित करते हैं हम उस मार्ग पर चलना नहीं चाहते। यह सत्य है कि जब सपना टूटता है, सपनों का संसार विसर्जित होता है तो आदमी को बहुत बड़ा आघात लगता है। इस

संदर्भ में दास को हुजूर का एक और कौतुक याद आता है जोकि दास के लोनी डेरे के प्रवास के दौरान ही हुआ था।

उन दिनों डेरे में नारंग साहिब नामक एक जिज्ञासु जीव आया। हुजूर के व्यक्तित्व से वह बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने हुजूर से नाम दान लिया और नित्य प्रति डेरे आकर सेवा करने लगा। मेरे पिता दास राणा जी से उनकी बहुत गहरी दोस्ती थी इसलिए वह जब भी डेरे में आते तो हमारे परिवार से उनकी मुलाकात जरुर होती। घण्टों हम बैठते और हुजूर के बारे में अध्यात्म के बारे में बातचीत करते। नारंग साहिब हुजूर से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने Port Authority of India की अपनी पक्की नौकरी छोड़कर हुजूर की सेवा में ही रहने का निर्णय कर लिया। पढ़े लिखे तो थे ही, सो उन्होने हुजूर के बारे में व हुजूर के मिशन के बारे में एक पुस्तक लिखने का मन बना लिया। इस बारे में अक्सर वह दास के पिता जी से विचार-विमर्श करते और हर बार यही कहते कि जब भी सोचता हूँ तो बहुत कुछ दिमाग़ में आता है लेकिन जैसे ही पुस्तक लिखने बैठता हूँ दिमाग़ खाली हो जाता है। हाथ जड़ हो जाते हैं। दास के पिता जी ने उन्हे इस बारे में हुजूर से बात करने का मशवरा दिया। दूसरे दिन हुजूर के चरणों में उन्होने निवेदन किया तो हुजूर ने उसे कहा कि यदि तुम किताब लिखना चाहते हो तो लिखने के लिए बैठने से पहले अरदास करना फिर कलम उठाना। जो कुछ भी लिखवाना है हम स्वयं लिखवा लेंगे। उसके बाद वह लगभग एक सप्ताह उपरांत डेरे में पागलों की सी स्थिति में नज़र आए। कपड़े मैले व फटे हुए थे। शरीर व चेहरे पर जगह-जगह चोटों के निशान थे। कभी धरती पर लोटते, धरती को चूमते, वृक्षों से लिपटते, बालकों की

तरह घुटनों के बल रेंगते तो कभी नाक को धरती पर रगड़ते। ऐसा कुछ दिन चलता रहा। नारंग साहिब का परिवार तो पहले ही बहुत बुरी स्थिति में था, इन हालातों ने उन्हे बुरी तरह तोड़ दिया। नारंग साहिब के परिवार ने हुजूर के चरणों में आकर निवेदन किया कि यदि यही हालात रहे तो भूखों मरने की नौबत आ जाएगी इसलिए आप इन्हे ठीक कीजिए।

कुछ दिनों बाद फिर से नारंग साहिब सामान्य हालत में डेरे आए और हमारे परिवार से मिलना हुआ। मेरे मन में उनकी पागलों जैसी स्थिति के बारे में जानने की बहुत इच्छा थी। मैंने उनसे पूछा कि आपको क्या हो गया था? इस पर उन्होने कहा कि जैसे ही मैंने किताब लिखने से पहले हुजूर को अरदास की तो अचानक मेरा सारा शरीर प्रकाश से भर गया और मेरा तीसरा नेत्र हुजूर ने खोल दिया। उनके अनुसार उन्हे हर चीज़ में हुजूर का चेहरा नज़र आता। धरती में, वृक्षों में, जानवरों में। आँखें बंद करते तो भी दिन होता और वह सो भी न पाते। ऐसा लगता था जैसे सारा संसार समाप्त हो गया है और वह नितांत अकेले हैं।

कहने का अर्थ यह है कि साधारण जीव के सपनों का संसार जब विसर्जित होता है तो उसे आघात लगता है। इसी आघात से बचाने के लिए किसी कामिल मुर्शिद, पूर्ण गुरु की आवश्यकता पर प्रत्येक धर्म ग्रन्थ ने बल दिया है।

इसी संदर्भ में एक और साखी यहाँ दी जा रही है। दसवें गुरु साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज की पत्नी माता सुन्दरी जी ने एक बार गुरु साहिब से निवेदन किया कि महाराज जी, आप तो संगत के कामों में बहुत व्यस्त रहते हैं और कई बार तो बाहर जाकर

आप महीनों नहीं लौटते। इस दौरान जो भी संगत दरबार में आती है उन्हें निराश लौटना पड़ता है क्योंकि मैं आपकी धर्म पत्नी हूँ इसलिए संगत के जीव मुझे भी आदर सत्कार देते हैं मुझे भी माथा टेकते हैं। आप मुझ पर कृपा करें ताकि संगत को निराश न लौटना पड़े और आपकी अनुपस्थिति में भी उनके कार्य सिद्ध होते रहें। गुरु साहिब ने पहले तो टालना चाहा परन्तु जब माता जी ज़िद करने लगीं तो गुरु साहिब ने कहा कि तुम सुमिरन किया करो नानक पातशाह मेहर करेंगे। माता जी ने हुक्म मान कर सुमिरन करना शुरु किया और हुजूर के कथनानुसार आप पर कृपा हो गई और तीसरा नेत्र खुल गया और माता जी त्रिकालदर्शी हो गईं। गुरु साहिब जब कुछ समय बाद वापस पहुँचे तो माता जी उनके चरणों में गिर कर विनती करने लगीं कि महाराज जी दया करो, रहम करो। गुरु साहिब ने पूछा कि क्या हो गया? इस पर माता जी ने कहा कि आपके हुक्म अनुसार मैंने सुमिरन करना शुरु किया और आप की कृपा से मुझे सब कुछ नज़र आना शुरु हो गया। गुरु साहिब ने कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है। माता जी ने कहा कि महाराज जी, मैंने आने वाले समय के बारे में देखा है। मैंने देखा है कि हमारे परिवार पर व पूरे खालसा पंथ पर बहुत गंभीर समय आ गया है। जंग में बहुत तबाही हुई है। हमारे दोनों बड़े साहिबज़ादे जंग में शहीद हो गए हैं। दोनों छोटे साहिबज़ादे दीवारों में चिनवा दिए गए हैं, माता जी भी शरीर त्याग गई हैं। सारा परिवार छिन्न-भिन्न हो गया है। आप तो शक्ति के मालिक हो, समय को बदलने की समर्थता आप में है। आप कृपा करके इसे बदल दें। मैं अपने परिवार को अपनी आँखों के सामने तबाह होते नहीं देख सकती। गुरु साहिब ने मुस्कुरा कर कहा

सुन्दरी, तुम माँ हो, गुरु कृपा से तुम्हें दृष्टि तो मिल गई परन्तु अभी तुम्हारी आत्मा बहुत कमज़ोर है इसलिए संगत की सेवा किया करो। माता जी ने कहा कि महाराज जी, आप बात को टालिए मत, जो आपसे विनती की है उसे पूरा कीजिए। गुरु साहिब ने कहा किं भाग्यवान, मैं उस परवरदिगार का नौकर हूँ। यह ताकत मुझे संगत की सेवा करने के लिए मिली है, अपने काम करने के लिए नहीं। सन्त का करिश्मा खुदा का कहर होता है। तुम्हारे मोह के लिए, तुम्हारी ममता की खातिर मेरे बच्चों को ईश्वर के घर में जो रुतबा और भविष्य में जो यश कीर्ति मिलने वाली है, मैं उसे नहीं छीन सकता इसलिए सेवा किया करो।

सपनों का संसार जब खत्म होता है तो जो आघात लगता है उसे झेलना साधारण जीव के वश में नहीं होता क्योंकि वह उसी संसार के साथ रहते-रहते उसे ही यथार्थ मानने लगता है और जब उस संसार में कुछ अप्रिय घटता है तो उसे बहुत धक्का लगता है परन्तु सत्य तो यही है कि इस सपनों के संसार से जब तक हम स्वयं को अलग नहीं करते तब तक मन वशीभूत नहीं हो सकता।

योगी लोग मन को साधने के बहुत से तरीके प्रयोग में लाते हैं। एक तरीका यह है कि आप यह मान कर अपना कामकाज करें कि सारा संसार स्वप्न रचित है। चाहे आप जो भी करें याद रखें कि यह सपना है। जागे हुए निरन्तर यह याद रखें कि सब कुछ सपना है। जो भी आसपास घटित हो रहा है वह सब सपना है। यदि आप अपनी नींद के सपनों की सीमा में प्रवेश करना चाहते हैं तो आपको जागते हुए ही इसकी शुरूआत करनी पड़ेगी। अभी तो स्थिति यह है कि सपना देखते हुए आप यह याद नहीं रख पाते कि यह सपना है उसे

आप यथार्थ ही मानते हो क्योंकि दिन भर जो आप देखते हो उसे सच मानते हो, असली मानते हो, यथार्थ मानते हो। ऐसी ही हमारी दृष्टि बन गई है। आपने भोजन किया, स्नान किया, बातचीत की या जो भी पूरा दिन आप करते हो वह आप यथार्थ मान कर चलते हो। यही मन की बंधी बंधाई धारणा बन जाती है। फिर रात में जब हम स्वप्न देखते हैं तो यही दृष्टि काम करती है कि जो कुछ भी हम देखते हैं वह यथार्थ है, असली है। अब समस्या यह है कि हम यथार्थ हैं या स्वप्न?

सन्त-महापुरुष जब यह कहते हैं कि समस्त संसार माया है तो उनके कहने का तात्पर्य यह होता है कि सारा संसार स्वप्न देखने की तरह है यह ख्याल रखो परन्तु हम मूढ़ लोग आगे से यह प्रश्न करते हैं कि यदि यह सब कुछ सपना है तो कुछ करने की जरुरत क्या है? फिर खाना खाने की क्या आवश्यकता है? क्यों खाएं और सोचें कि यह माया है, स्वप्न है? खाओ ही मत। इसका जवाब यह है कि तब यह भी याद रखना चाहिए कि जब भूख लगती है तो वह तो स्वप्न ही है। सन्त-महात्मा इस स्वप्न को बदलने को नहीं कहते क्योंकि ऐसा करने से दूसरी समस्या खड़ी हो जाएगी। वे कहते हैं कि बस याद रखो कि स्वप्न है उसे बदलने की जरुरत नहीं। यदि हम दिन में यह याद रख पाएं कि जो कुछ घटित हो रहा है वह सपना मात्र है तो यह दृष्टि हमारे सपनों में भी प्रविष्ट होने लगती है परन्तु यह इतना सरल नहीं है। मन बार बार हमें पुराने ढर्रे पर लाएगा कि यही यथार्थ है। जब स्वप्न में भी याद रहने लगेगा कि यह स्वप्न है तो वह यथार्थ बन जाएगा और आप सुबह उठोगे तो यह अनुभव नहीं होगा कि हम जाग उठे हैं बल्कि यह अहसास होगा जैसे हम एक सपने में से दूसरे सपने में सरक रहे हैं, तब दिन का कामकाज, दिन के

क्रिया-कलाप को सपने की तरह देखना सत्य हो जाएगा और अगर आठों पहर, चौबीस घण्टे का कार्य-कलाप भी स्वप्न ही हो जाएगा तो आप असली मार्ग पर पहुँच जाओगे। आप स्वप्न देखने वाले को समझने लगोगे तो आप दृष्टा हो जाओगे, तभी स्वयं को समझ पाओगे, आत्म साक्षात्कार कर पाओगे। बहुत से योगी लोग कुंडलिनी जागरण द्वारा इसी स्थिति को प्राप्त करते हैं और आत्म साक्षात्कार करते हैं। इन कार्यों से, इस विधि से मन बँधता तो है परन्तु पूर्ण तौर पर वश में आकर सहायक के तौर पर काम करने का लक्ष्य अभी दूर है। उसके लिए किसी पूर्ण गुरु की कृपा की आवश्यकता होती है। यदि मन बंध जाए और पूर्ण गुरु की कृपा भी काम करे तो आत्मिक आरोहण का काम शुरू हो जाता है।

इसका विपरीत तरीका यह है कि यह याद रखा जाए कि मैं हूँ अर्थात् संसार के विषय में न सोचा जाए केवल यह याद रखा जाए कि मैं हूँ। यहाँ मैं का अर्थ यह शरीर नहीं है, शरीर तो नश्वर है एक दिन मिट जाना है, वह स्वप्न है जो एक दिन टूटना है। यहाँ मैं का अर्थ है आत्मा। यह विधि सूफी परंपरा है। खाना खाओ, पानी पियो, कुछ भी करो परन्तु याद रखो कि 'मैं' हूँ।

एक विद्वान नागार्जुन का कथन है,"अब मैं हूँ क्योंकि संसार नहीं है। जब मैं नहीं था तो संसार था। एक ही रह सकता है या तो मैं या संसार।" इसका मतलब यह नहीं है कि संसार लुप्त हो जाता है। नागार्जुन के कहने का अर्थ सपनों के संसार से है कि या तो तुम हो सकते हो या सपने। दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते। किसी एक को जाना ही होगा। उपरोक्त कथन से मतलब यही है कि अभी तुम सपनों के संसार में जी रहे हो तो संसार वास्तविक लगता है।

यदि हम इस स्थिति को बदल पाएं और स्वयं वास्तविक हो जाएं तो संसार रुपी सपना हो जाता है।

एक रूसी विद्वान गुरजिएफ ने इस विधि पर तमाम उम्र काम किया। उन्होंने अपने एक शिष्य को एक बंद कमरे में रख कर तीन माह तक 'मैं हूँ' का अभ्यास करने को कहा। उसे कहीं बाहर न जाने दिया और अचानक तीन महीने बाद उस शिष्य के अंतर में सब कुछ जैसे ठहर गया, विचार, सपने सब कुछ जैसे बंद हो गए अर्थात् मन ठहर गया। बस अंतर में 'मैं हूँ' की धुन निरन्तर बज रही थी। तब गुरजिएफ ने उसे बाहर निकाला और उसे लेकर बाज़ार की ओर चल पड़े। शिष्य बाज़ार में पहुँच कर रुक गया। उसे लगा कि जैसे सारा नगर सो रहा है। लोग नींद में चल रहे हैं। दुकानदार नींद में सामान बेच रहे हैं, खरीददार नींद में ही सामान खरीद रहे हैं, नींद में ही क्रोध कर रहे हैं, लड़-झगड़ रहे हैं, हँसी ठट्ठा कर रहे हैं, प्रेम कर रहे हैं। सब नींद में हैं। शिष्य ने विस्मय से सब कुछ देखा और कहा कि गुरुदेव मैं आगे नहीं जाना चाहता। इस नगर को क्या हो गया है? समूचा नगर सोया हुआ है। ऐसा लग रहा है कि सब नशे में हैं, सो रहे हैं, बेखबर हैं। गुरजिएफ ने कहा कि नहीं, इन लोगों को कुछ नहीं हुआ है। सत्य तो यह है कि तुम्हें कुछ हो गया है। तुम नींद से जाग गए हो, तुम्हारा नशा उतर गया है। तीन माह पहले जब तुम यहाँ घूमते थे तो तुम्हें यह नगर सोया हुआ दिखाई नहीं देता था क्योंकि तब तुम भी सो रहे थे। अब तुम देख सकते हो क्योंकि तुम्हें बोध हो गया है कि तुम शरीर नहीं हो आत्मा हो, उस परमात्मा का अंश हो जो कभी नहीं सोता। तुम जाग गए हो। इसी जागरण के साथ दु:ख समाप्त हो जाता है, मृत्यु विदा हो जाती है। मृत्यु का भय

जाता रहता है क्योंकि मृत्यु तो शरीर की निश्चित है आत्मा की नहीं। आत्मा तो अजर अमर है और शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है। जैसे हम रोज़ कपड़े बदलते हैं तो भय से नहीं अपितु भय मुक्त होते हैं। एक बार सपना समाप्त हुआ तो आदमी जाग जाता है, उसकी तंद्रा भंग हो जाती है, वह स्वयं को पहचान जाता है और मन की चंचलता लुप्त हो जाती है। घृणा, क्रोध, लोभ, मोह, सब विदा हो जाते हैं, आत्मा मन के बंधन से मुक्त हो जाती है। आप प्रेमपूर्ण नहीं अपितु प्रेम ही हो जाते हो। यही वह अवस्था है कि मंसूर ने कहा था:-

"आ ना हक़"

कि मैं परमात्मा हूँ। सूली पर चढ़ा पर कराहा नहीं, आत्मा के लिए शरीर एक वस्त्र मात्र रह गया था जो कभी भी उतार कर फेंका जा सकता है, कभी भी बदला जा सकता है। हुजूर महाराज जी ने हमें नाम सुमिरन का मार्ग दिया है। वह वास्तव में जीते जी जागने का ही मार्ग है जब हम आत्म-साक्षात्कार कर पाएंगे तो यह सपना टूट जाएगा। हम कर्ता के स्थान पर दृष्टा हो जाएंगे और मन हमें धोखा नहीं दे पाएगा परन्तु एक बात याद रखने लायक यह है कि सोये हुए को जगाना आसान है परन्तु जो सोने का नाटक मात्र कर रहा हो उसे भला कौन जगा सकता है?

पंच चोर मिल लागे नगरिया

मन की गाँठ आत्मा के साथ सृष्टि की रचना के समय से ही बँधी हुई है। तब से लेकर आज तक न जाने हमने कितने जन्म लिए हैं, न जाने कौन-कौन से शरीर धारण किए हैं। मन की यात्रा का आरम्भ शरीर के पैदा होने के साथ ही हो जाता है। शरीर की यात्रा तो पूर्ण हो जाती है परन्तु मन की यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। आदमी मर जाए तो हम कहते हैं कि वह पूरा हो गया परन्तु यह आधा सच है। शरीर पूर्ण हो गया क्योंकि वह अपने स्रोत पाँच तत्वों हवा, पानी, अग्नि, मिट्टी व आकाश में विलीन हो जाता है परन्तु आत्मा का सफर अभी जारी है वह तो तभी पूर्ण हो सकती है जब वह भी अपने स्रोत परमात्मा में समा जाए। मन की यात्रा भी अभी जारी है क्योंकि वह अपने स्रोत ब्रह्मा में विलीन नहीं हुआ। शरीर तो पूर्ण हो गया परन्तु आत्मा अपने स्रोत तक नहीं पहुँच पाती क्योंकि मन स्वरूप वज़न उसके साथ बंधा हुआ है। मजबूरन संचित कर्मों के आधार पर आत्मा को दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है और फिर शुरू होता है बार-बार कर्म कमाने व कर्म भोगने का अटूट सिलसिला। पर्त दर पर्त कर्म स्वरूप धूल आत्मा स्वरूप शीशे पर जमती जा रही है। यही कारण है कि आत्मा का वास्तविक रूप हमें नज़र नहीं आता। हुज़ूर महाराज दर्शन दास जी अपनी वाणी द्वारा समझा रहे हैं:

"पंचम बसत पंच विकार,
काम क्रोध लोभ मोह हंकार।।"

(यशवन्ती निराधार धाम पहला)

"अक्खां दा तकणा काम दी है भावना,
कन्नां दा सुनणा रूप है शैतान दा।
नक दा सुघणा गुण पशु माल दा,
सवादां दा चखणा रस है जबान दा।
सरीर की गरमी सबूत है हंकार दा,
मनुख दी सोच वांग सप्प ते बांदरी दी चाल दा।।"

(यशवन्ती निराधार धाम पहला)

हुजूर महाराज दर्शन दास जी समझा रहे हैं कि पाँच तत्व के इस मानव शरीर में पाँच विकारों ने वास कर रखा है। आँखों की दृष्टि से मानव काम-तृप्ति का काम लेने लगा है। कानों द्वारा सुनी बातों पर विश्वास करना अपने आपको शैतान के हवाले करने जैसा है। पशु तो नाक की सूंघने की शक्ति का प्रयोग अपनी जीविका में करते हैं परन्तु मनुष्य अपनी जीभ के स्वाद की खातिर इस नाक का प्रयोग करने लगा है। शरीर तगड़ा है तो उसका प्रयोग वह अपने हर सही गलत कार्य की सिद्धि में करने लगा है और मानव की सोच कभी भी सीधी नहीं चलती वह तो ऐसी ही है जैसे साँप और वानर की चाल जो कभी भी सीधी नहीं होती अपितु टेढ़ी मेढ़ी ही होती है। यही कारण है कि जिस मानव का जन्म उस पूर्ण सुख को प्राप्त करने के लिए हुआ था उसने अपने जीवन में केवल दुःख ही दुःख भर लिया है व दिन रात उसी में मरता रहता है। भाई गुरदास जी कहते हैं:

"गज मृग मीन पतंग अलि इकतु इकतु रोगि पचंदे।।
माणस देही पंजि रोग पंजे दूत कसूतु करंदे।।
आसा मनसा डाइणी हरख सोग बहु रोग वधंदे।।
मनमुख दूजै भाइ भाइल लगि भंभल भूसे खाइ भवंदे।।"

(वार ५, पउड़ी २०)

भाई साहिब समझाते हैं कि हाथी, हिरण, मछली व भँवरे में एक एक रोग होता है। हाथी में काम रोग होता है, यही रोग उसे कैद करवाने मे सक्षम होता है। मृग को नासिका रोग है, वह अपने अंतर में छिपी कस्तूरी की सुगंध को पचा नहीं पाता और उसी की खोज में मर जाता है। मछली जिहवा रोग से ग्रस्त है और पतंगा दृष्टि रोग से ग्रस्त है। जहाँ भी रोशनी मिलती है उसके इर्द गिर्द चक्कर काटकर जल मरता है परन्तु इस मानस देह में तो पूरे पाँच चोर घुसे हुए हैं और नित्य नया आडम्बर रचते हैं। मानव इतनी सी बात नहीं समझ पाता और मन के वशीभूत भटकता रहता है।

मन पाँचो के बस परा मन के बस नहिं पाँच,
जित देखूँ तित दौं लगी जित भागूं तित आँच।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

कबीर साहिब समझा रहे हैं कि मन काल के पाँच एजेंटों के वश में हो गया है। जहाँ भी देखता हूँ आग लगी हुई है जिसकी तपिश हर स्थान पर मुझे महसूस होती है।

आम तौर पर हमारी चेतना विचारों से, विषय वासनाओं से, कामनाओं से लदी रहती है। वह इनसे इतनी अधिक प्रभावित रहती है जैसे कोई शीशा धूल से अटा पड़ा हो। हमारा मन चंचल नदी के सतत् प्रवाह की तरह होता है। विचार चल रहे हैं, कामनाएँ चल रही हैं, पुरानी यादें सरक कर नई यादों को स्थान दे रही हैं। दिन रात यही सिलसिला चलता रहता है। यहाँ तक कि नींद में भी हमारा मन कार्यशील रहता है। सपने चलते रहते हैं। यही कारण है कि हम स्थिर नहीं हैं। इस स्थिति को अस्थिरता की अवस्था कहा जाता है। जब कोई विचार न हो, कोई इच्छा, कोई कामना सिर न उठाए तो

सारा उहापोह समाप्त हो जाता है, दुविधा समाप्त हो जाती है। यही अवस्था पूर्ण ध्यान की, पूर्ण समाधि की अवस्था होती है, पूर्ण मौन की अवस्था होती है। इसी पूर्ण मौन की अवस्था में ही सत्य का साक्षात्कार होता है। अंतर का वह दिव्य संगीत सुनाई देता है जो निरन्तर हमारे अंतर में गुँजायमान है परन्तु कोलाहल के कारण उसे हम सुन नहीं पाते। कहने का अर्थ यह है कि जब मन नहीं होता अब ही पूर्ण ध्यान की अवस्था होती है।

परन्तु मन तो काल के पाँच चोरों के वशीभूत विषयों का भोग करने में रत है। उसे अपने स्रोत का ज्ञान नहीं है, अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है। जैसे हाथी असीम काया व असीम शक्ति का स्वामी है परन्तु उसकी आँखें बहुत छोटी होती हैं और वह सामने खड़े मनुष्य से भयक्रांत हो जाता है क्योंकि उसे मनुष्य बहुत बड़ा दिखाई देता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण दी जा सकती है कि जैसे एक आदमी रात के समय एक झोंपड़े में बैठ कर एक दीए की रोशनी में कोई पुस्तक पढ़ता रहा। पढ़ते पढ़ते जब वह थक गया तो उसने फूँक मार कर दीए को बुझा दिया। दीया बुझते ही वह आश्चर्यचकित रह गया कि पूरा झोंपड़ा रोशनी से भर गया। पूर्णिमा का चाँद जो दीया जलने तक बाहर खड़ा था वह दीया बुझते ही मानो पूर्ण वेग से झोंपड़े के अन्दर आ खड़ा हुआ। जैसे ही दीए की मद्धिम रोशनी खत्म हुई चाँद की किरणें दरवाज़े से, खिड़की से, दीवार के छेदों में से अन्दर आकर नाचने लगी। एक छोटा सा दीपक चाँद को बाहर ही रोके रहा।

हमने भी अपने अंतर में बहुत से छोटे-छोटे दीपक जला रखे हैं- काम के, क्रोध के, लोभ के, मोह के, अहंकार के। इनके कारण ही ईश्वर स्वरूप चाँद बाहर ही खड़ा रह जाता है। 'समाधि' का अर्थ है

कि फूँक मार कर इन दीयों को बुझा दो और सम्पूर्ण अन्धेरा कर दो। 'मैं' स्वरूप ज्योति को मिटा दो तो पाओगे कि चारों ओर वह आ जाता है। भक्त कबीर दास जी इस बारे में कहते हैं:-

"तूं तूं करता तूं भया मुझ महि रहा न हूं।।
जब आपा पर का मिटि गइया जत देखऊ तत तू।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग- १३७५)

कि जब तक मुझ में कर्ता का भाव था तब तक ईश्वर मुझसे कहीं दूर छिपा था। जब मेरे अंतर से कर्ता का भाव जाता रहा तो मुझे चहुं ओर वही दिखाई देने लगा। अर्थात् जहाँ अहंकार स्वरूप 'मैं' है वहाँ ईश्वर नहीं हो सकता। कतरा जब सागर में मिल जाए तो सागर हो जाता है उसका अपना अस्तित्व नहीं रहता।

जब तक मन की चंचलता बरकरार है तब तक इसके माध्यम से ईश्वर तक नहीं पहुँचा जा सकता चाहे जितने मर्जी यत्न कर लो। ध्यान टिक ही नहीं सकता। 'समाधि' का अर्थ है कि मन नहीं है। जब यह अहसास गहरा होता जाता है तो अंतर में मौन की, शान्ति की स्थापना होती जाती है। सब कुछ जैसे थम सा जाता है मन में कुछ भी नहीं चलता। इस अवस्था में हमें ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति होती है, सहज अवस्था की प्राप्ति होती है।

मन एक असहज अवस्था है, मन सहज कभी नहीं बन सकता। इस मन ने हमारे अंतर में इतना शोर शराबा व कोलाहल भर रखा है कि उसमें हमारी सहज अवस्था कहीं गुम हो गई है, खो गई है। इसी सहज अवस्था को पाने के लिए हम दर दर भटकते हैं। मन्दिरों में, मस्जिदों में, गिरिजाघरों में, गुरुद्वारों मे तीर्थाटन करते हैं। नाना प्रकार के यज्ञ हवन, प्रपंच करते हैं, पूजा-पाठ, दान-पुण्य करते हैं

परन्तु इन सबसे सहज अवस्था मिलना तो दूर उलटे हम और अधिक असहज होते चले जाते हैं। प्रश्न यह है कि क्या सहज अवस्था को पुन: प्राप्त किया जा सकता है? जिस स्वर्ग से हम च्युत हो चुके हैं क्या वह हमें दोबारा प्राप्त हो सकता है? गुरु साहिब कहते हैं कि इस सहज अवस्था को पुन: पाया जा सकता है, इस शान्ति को दोबारा प्राप्त किया जा सकता है परन्तु इसके लिए हमें मन को शान्त करना पड़ेगा।

आप कभी बच्चे की आँखों में झाँक कर देखो बच्चे की आँखों में आपको एक दिव्य शान्ति, एक अद्‌भुत मौन दिखाई देगा इसीलिए कहते हैं कि बच्चे ईश्वर का रूप होते हैं क्योंकि वह सहज होते हैं। प्रत्येक बच्चा सहज रूप लिए हुए ही जन्म लेता है क्योंकि उसे समाज के रंग ढंग नहीं आते, विचार करना, तर्क करना, हिसाब किताब करना नहीं आता। बचपन से यौवन अवस्था तक वह यही सब कुछ सीखता है। उसे शब्द, भाषा, व्याकरण का ज्ञान सीखना ही पड़ता है क्योंकि उसे इस समाज में जीवन गुजारना है। जैसे-जैसे वह संसार के रंग ढंग सीखता जाता है उसकी सहजता, निर्दोषता खोती चली जाती है, सुप्त होती जाती है। दूसरे शब्दों में यूँ भी कहा जा सकता है कि वह सहज से दूर हटता चला जाता है, असहज होता जाता है। उसके मन की कोरी स्लेट समाज की लिखावट से गंदी होती जाती है। वह समाज में रह कर, समाज के रंग ढंग सीख कर कुशल तो हो जाता है परन्तु उसकी सहजता प्राय: समाप्त हो जाती है।

ईश्वर प्राप्ति के लिए उस सहजता की पुन: प्राप्ति नितांत आवश्यक है। यह सहजता, यह निर्दोष स्वभाव हमारे भीतर कहीं बना रहता है परन्तु हम उससे अनभिज्ञ हैं। इसे दूसरे तरीके से कह लें कि

एक हीरा कूड़े कचरे के ढ़ेर में कहीं दब गया है, खो गया है परन्तु है अवश्य। यदि उस हीरे को हम खोजने का प्रयास करें तो वह हमें दोबारा प्राप्त हो सकता है। इस में कोई दो राय नहीं कि हम सहजता में ही पैदा होते हैं परन्तु फिर मन के रंग ढंग सीख लेते हैं। किसी दिन थोड़ा सा प्रयास करेंगे, अपने अंतर में खोज करेंगे तो पाएंगे कि वह स्वछंद धारा अभी भी अंतर में कहीं बह रही है। कलकल करता जीवन स्रोत अभी भी जल से भरपूर है। इसी को पाना परम आनन्द है।

हमारा मन एक कचरे के ढ़ेर की तरह हो गया है जोकि हमारे प्रत्येक कर्म व प्रत्येक साँस के साथ बढ़ रहा है। यह मुर्दा नहीं अपितु जीवन्त कचरा है। आप इसे चाहे जितना भी बाहर क्यों न फेंके यह उतना ही बढ़ता जाता है। यह तो उस अमर लता की तरह है जिसे जितना चाहो काटो वह फिर से उग आती है। पाँच चोरों की संगति में यह और भी स्वछंद व उन्मुक्त हो गया है और आत्मा के आरोहण में हर सम्भव रोड़ा अटकाता है। हुजूर महाराज दर्शन दास जी अपने सत्संगों में कहा करते थे कि अध्यात्म के मार्ग में बहुत काँटे हैं। इतने काँटे हैं कि यदि इन्हें चुनकर मार्ग साफ करने का यत्न करोगे तो जीवन की अवधि समाप्त हो जाएगी पर काँटे समाप्त न होंगे। तो फिर रास्ता तय कैसे होगा? हुजूर मार्ग तय करने का तरीका बताते हैं कि काँटे मत चुनो वरन् मजबूत जूते पहन लो। स्वयं को कर्ता नहीं दृष्टा मान लो। हालाँकि यह कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं है। जिस दिन आपके अंतर में यह सोच गहरी उतर जाती है तो आप पाएँगे कि कचरा तो वहीं है पर आप उस कचरे का हिस्सा नहीं रहे। मन को परास्त करने का सबसे अच्छा तरीका है उसकी उपेक्षा

करना। लड़कर आज तक उससे कोई नहीं जीत पाया है जो आप जीत पाओगे।

हुजूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी बहुधा अपने सत्संगों में हमें चेताते हैं कि मन के जंजाल से निकलो व अपने प्रारब्ध व संचित कर्मों को निर्मल करने का कोई उपाय करो अन्यथा ईश्वर का आत्मा से मिलाप असम्भव है। हुजूर फर्मान करते हैं कि मन के वशीभूत जो कर्म हम कर रहे हैं उनका अच्छे और बुरे कर्मों में विभाजन यदि हमें करना पड़े तो हमें पता चलेगा कि हमारा खाता शून्य से भी नीचे माइनस में है फिर भी हमें डर नहीं लगता और निर्भय भाव से हम कर्मों को संचित किए जा रहे हैं। कई बार हमारे जीवन में कोई ऐसी स्थिति आ जाती है कि हम बुरी तरह से विपदाओं में घिर जाते हैं। ऐसी स्थिति में हम अपना आत्मवलोकन करते हैं। कई लोग तो यह कहते पाए जाते हैं कि जहाँ तक हमारी नज़र जाती है हमने कोई बुरा कर्म नहीं किया, किसी का दिल नहीं दुखाया तो फिर ईश्वर हमें किस बात की सज़ा दे रहा है? जब हमने किसी को दु:ख दिया ही नहीं है तो हमें यह दु:ख क्यों भोगना पड़ रहा है? आत्म मंथन अच्छी बात है परन्तु हमारा आत्म मंथन करना ठीक उसी तरह है जैसे कोई अन्धा आदमी अपनी यात्रा के दौरान देखे गए दृष्यों पर टिप्पणी कर रहा हो। इस संदर्भ में एक कथानक याद आता है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया तो भगवान् श्री कृष्ण पांडवों सहित भीष्म पितामह का आशीर्वाद लेने पहुँचे। सबने प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। पितामह भीष्म ने श्री कृष्ण से अपने पास आने का आग्रह किया। जब भगवान् पितामह के पास पहुँचे तो पितामह ने करुण पुकार की कि हे गिरिधर! इस धर्म युद्ध में जो मुझे शर शैय्या मिली है इसका कारण

मुझे समझ नहीं आ रहा। मेरे कौन से कर्म का परिणाम मुझे इतनी पीड़ा दे रहा है? प्रभु ने विनम्र भाव से कहा पितामह, आप तो दिव्य दृष्टि के स्वामी हैं, आप स्वयं त्रिकालदर्शी हैं फिर मुझ से यह अनुग्रह क्यों? पितामह ने कहा कि हे केशव! मैंने अपने पिछले सौ जन्मों में झाँक कर देखा है परन्तु मुझे कोई ऐसा कर्म दिखाई नहीं दिया जिसके परिणाम स्वरुप मुझे यह तीरों का बिस्तर मिला है। प्रभु मुस्कुराए और कहा कि पितामह अब मुझसे दिव्य दृष्टि लेकर एक और जन्म पीछे जाइए और देखिए। प्रभु कृपा से पितामह ने देखा कि वह एक बालक हैं और एक सुई से एक चींटे को छेद रहे हैं और खेल रहे हैं। पितामह की आँखों में आँसू आ गए। उन्होने कहा कि हे हरि! इस कृत्य की इतनी बड़ी परिणति? वह कर्म तो मैंने तब किया था जब मैं एक अबोध बालक था। इस पर श्री हरि बोले पितामह, कर्म तो कर्म है जब तक भुगतान नहीं होगा तब तक मुक्ति सम्भव नहीं। हमारे कर्म तो हमें भोगने ही पड़ेंगे।

भाव यह कि यदि पितामह भीष्म जैसे त्रिकालदर्शी को अपने एक सौ एक जन्म पहले किए गए अबोध कृत्य का परिणाम भुगतना पड़ सकता है तो हमारी गिनती कहाँ होती है? हम तो जानबूझ कर दुष्कर्म संचित किए जा रहे हैं और फिर भी कहते हैं कि हमने किया क्या है जो हमें दुःख भोगना पड़ रहा है। महाराज तरलोचन दर्शन दास जी कहते हैं कि यदि हम अपने पूरे जीवन में किए गए अच्छे कर्म गिनना चाहें तो अँगुलियों पर गिन सकते हैं और बुरे कर्म गिनना चाहें तो वह हमारे वश में नहीं। गिनती समाप्त हो जाएगी परन्तु कर्म खत्म न होंगे और हम फिर भी निर्भीक हैं। फिर भी यह सोचते हैं कि तीर्थाटन करने से, मन्दिर मस्जिदों में जाकर माथा टेकने से हमें

स्वर्ग प्राप्त होगा। हुजूर आगे फर्मान करते हैं कि जो पाँच तत्व का शरीर हमने धारण किया है यह किराये का है। शरीर छोड़ते समय हमारे अच्छे कर्मों का तीस प्रतिशत (छः प्रतिशत प्रति तत्व) हमारे खाते में से निकल जाएगा। इसके बाद इस शरीर में रहते हुए जो हम पाँच चोरों की सेवाएँ प्राप्त करते हैं वह भी इस शरीर में अपनी उपस्थिति का किराया वसूल करते हैं। चाहे वह काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है या अहंकार। दिन-रात हमारे कर्मों की कमाई ये पाँच चोर लूट रहे हैं। हम अपनी सांसारिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं परन्तु उस सम्पत्ति को अपने सामने जाने-अनजाने लुटते देखते हैं जो वास्तव में हमारे साथ परलोक में जानी है। जरा सोचिए कि हमारे पास कट कटा कर क्या पूँजी बचेगी जिस पर हमें इतना अहंकार है? ईश्वर का स्मरण किया एक पल और बात करें मुक्ति की या ईश्वर से मिलन की तो यहाँ यह कहना जरूरी न होगा कि हम कितने बुद्धिमान हैं।

हुजूर महाराज दर्शन दास जी कई बार कहा करते थे कि आज का युग कहने को कलयुग है परन्तु वास्तव में है "कलहयुग"। हम अपने अंतर में ही झाँक कर देख लें सिवाय कलह के कुछ दिखाई नहीं देगा। आज संसार में जितना पाप है, अधर्म है उतना पहले कभी न था। आज संसार में जितना धन है, जितना लालच है उतना कभी न था। ईश्वर का नाम लेना तो दूर हम मूढ़मति तो उसके अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाने से नहीं चूकते। दिन रात ईश्वर की दी गई वस्तुओं का प्रयोग करते हैं और फिर भी उसका धन्यवाद नहीं करते। हम सा कृतघ्न और कौन होगा कि जिसने यह शरीर दिया, जिसने जीवन दिया, सांस लेने को हवा दी, पीने को पानी दिया, खाने को

अन्न दिया, रहने को धरती दी उसे भूल कर स्वयं को ही ईश्वर समझ बैठे हैं।

कहते हैं कि मानव का अपने जीवन में जैसा लक्ष्य होता है उसके कर्म भी वैसे ही होते हैं। मन तो चंचल है ही और काल के वशीभूत भी। आप कभी मनन् करें कि बुरे कर्म करते हुए आपका मन शत प्रतिशत आपके साथ होता है। चाहे आप कामातुर हों, क्रोधित हों या किसी का अहित कर रहे हों आपका मन पूरी तरह एकाग्र होता है। ईश्वर की या सत्य की बात करने भर की देर है कि आपका मन आपको छोड़ देता है। अच्छे कर्मों में आपका मन टिकता ही नहीं। यही कारण है कि हमारे संचित कर्मों में दुष्कर्मों की ही अधिकता होती है। जैसा मनुष्य का जीवन लक्ष्य होगा उसका कर्म भी वैसा ही होगा। यही कारण है कि आज जितना अधर्म संसार में है उतना पहले कभी न था। ऐसा नहीं है कि पुरातन समय में अधर्म न था। था तो जरुर परन्तु लोग धार्मिक थे और वर्तमान युग में धर्म धर्म न हो कर कारोबार हो गया है। हो सकता है कि बहुत लोगों को इस बात पर एतराज हो परन्तु सन्त-महात्मा कहते हैं कि यदि कारोबार के समय कारोबार किया जाये और भक्ति के समय भक्ति तो बात बनती है। अब बैठे हैं भक्ति करने और मन है कारोबार में, बैठे हैं सत्संग में और मन है दुकान में तो वह भक्ति नहीं कारोबार ही हुआ इसे धार्मिक कर्म कहना तर्कसंगत नहीं है। कहते हैं:-

"हत्थ कार वल ते चित्त यार वल।"

बात तो वर्तमान समय में तभी बन सकती है जब हाथ तो काम कर रहे हों और आपका चित्त ईश्वर भक्ति में लीन हो। कर तो रहे है हम पूजा और चित्त दौड़ रहा है बाहर से आ रही आवाज़ों की

ओर। बैठे हैं मन्दिर में, सुन रहे हैं प्रवचन और ध्यान है घर की ओर कि पता नहीं बच्चे क्या कर रहे होंगे, खाना खाया होगा या नहीं तो भला भक्ति कैसे होगी? मन एकाग्र नहीं तो वो भक्ति कैसी? शरीर तो है मन्दिर-मस्जिद में और चित्त है दुकान में तो यह तो कारोबार ही है पूजा नहीं। जब पूजा ही कारोबार हो जाए तो फिर शान्ति कैसे हो सकती है? इसीलिए हुजूर कहते थे कि यह कलयुग नहीं 'कलहयुग' हो गया है। बात कलयुग की हो रही है तो नानक पातशाह का एक शब्द याद आता है:-

"नानक मेरू सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु।।
जुगु जुगु फेरि वटाइअहि गिआनी बुझहि ताहि।।
सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु।।
त्रेते रथु जतै का जोरू अगै रथवाहु।।
दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु।।
कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु।।"

(आसा दी वार)

गुरु साहिब ने विभिन्न युगों के बारे में फर्मान किया है कि सतयुग में लोगों में सन्तोष बहुत था और धर्म का प्रसार था। त्रेता में जती लोग थे जो कि भक्ति के जोर पर बहुत रिद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करते थे, हठयोग का पूर्ण प्रसार था। द्वापर युग में योगियों व तप करने वालों की संख्या बहुत थी और सत्य का प्रसार था परन्तु कलयुग पाप प्रधान युग है जिसमें पापाचार का प्रसार चारों ओर है। गुरु साहिब कहते हैं कि जिसने उस प्रभु का सार पा लिया वह फिर युगों युगों में नहीं भटकता बल्कि मोक्ष प्राप्त कर जाता है। कई बार सुनने में आता है कि फलाँ आदमी तो सतयुगी पुरुष है या वह आदमी

तो कलयुगी पुरुष है। अच्छा बुरा तो प्रत्येक युग में रहा है और रहेगा। ऐसा नहीं कि सतयुग में बुरे लोग नहीं थे और यह भी नहीं है कि कलयुग में अच्छे लोग नहीं हैं। यदि मनुष्य आत्म मंथन करे तो जन्म से लेकर मृत्यु तक का सफर चारों युगों में बांट सकता है।

जब जीव मातृ गर्भ में होता है तो उसका ईश्वर के साथ पूरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ होता है। ईसा मसीह ने अपने कथनों में कहा है,"तुम तभी मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकोगे जब तुम छोटे बच्चे की भान्ति हो जाओगे।" इस कथन का अर्थ यह है कि हम बच्चों की तरह सहज व सरल हो जाएँ अर्थात् हम बच्चे की आन्तरिक अवस्था तक पहुँच जाएँ। जब बच्चा माँ के गर्भ में होता है तब केवल माँ ही होती है। बच्चा माँ के सहारे जी रहा होता है, न अपना मस्तिष्क, न श्वास, न ही हृदय की धड़कन, न डर, न वैर और न द्वेष। बच्चा पूरी तरह से समर्पित है और माँ के अस्तित्व का ही अंग है। उसका अपना अलग कोई अस्तित्व है ही नहीं। यही पूर्ण समर्पण है और यह समर्पण आ जाए तो जीव ईश्वर के साथ एकीभाव हो जाता है। दूसरा सबसे बड़ा कारण एकीभाव का यह भी है कि इस स्थिति में मन आत्मा के संग नहीं होता और यदि होता भी है तो एक दम स्थिर। कई योगी लोग तो मातृ गर्भ में जो बच्चे की स्थिति होती है वैसी ही भंगिमा बनाकर तप करते हैं कि सिर घुटनों से लगा हो और टाँगें मुड़ी हों। मातृ गर्भ में अभी युगों की शुरुआत नहीं हुई होती। युगों का आरम्भ होता है बच्चे के जन्म लेते ही।

कभी आपने देखा होगा कि बच्चा जब पैदा होता है तो उसके चेहरे पर एक अजीब सी, अद्भुत सी शान्ति होती है, आँखों में सहजता व गहरा मौन। यह सभी ईश्वरीय गुण हैं। बच्चा नींद में

अधिक रहता है और यह नींद वास्तव में आत्मा का परमात्मा के साथ एकीभाव का होना दर्शाता है। बच्चा दरअसल उस एक में लीन रहना चाहता है, मौन में ही रहना चाहता है। ज़रा सी दखलअंदाजी से बच्चा खीझता है, रोकर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर करता है। ध्यान दें कि बच्चा पराए हाथों में खुश नहीं रहता और माँ के हाथों में आते ही शान्त हो जाता है क्योंकि इसी स्रोत का वह एक अंग है, हिस्सा है। पैदा होने से लेकर चलने फिरने तक, बोलने तक का समय सतयुग में जीने के समान है। बच्चा माँ में ही लीन रहना चाहता है, खुश है, अबोध है, असत्य का भाव उसे छू तक नहीं गया। अच्छे बुरे का ज्ञान उसे नहीं है, न खाने की चिंता, न सोने की, न पहनने की, न जागने की। न कोई दोस्त न दुश्मन। आत्मा का दर्पण अभी स्वच्छ है। माता के प्रति समर्पण ही उसे परम सुख देता है।

अब बच्चा इतना बड़ा हो गया है कि शिक्षार्थ पाठशाला जाए। शिक्षा ग्रहण करना वास्तव में समाज में रहने के तौर तरीके सीखना है। त्रेता युग में भगवान राम ने सिखाया है मर्यादा का पालन करना। एक पुत्र को कैसा होना चाहिए, भाई की, पत्नी की मर्यादा क्या है इत्यादि। यह समय हमारे जीवन में त्रेता युग का पर्याय है।

द्वापर में श्री कृष्ण ने हमें सिखाया कि हर हाल में धर्म की रक्षा करनी है ताकि सत्य का राज्य स्थापित हो। शिक्षा पूरी करने के बाद बच्चा संसार में कदम रखता है और अब मन एक प्रभाव शक्ति बन कर उसके कर्मों का सारथी बन बैठता है। इस आयु में मनुष्य का धर्म है आजीविका कमाना, परिवार पालना, इसके लिए चाहे उसे साम, दाम, दण्ड, भेद कुछ भी अपनाना पड़े वह नहीं चूकता। उसके लिए केवल अपना परिवार, रिश्ते नाते ही सत्य है बाकी सब संसार झूठ हो

जाता है। पचास पार करते ही मानव की आयु पर कलयुग सवार हो जाता है। सब कुछ सिमट कर मेरा, मैं हो जाता है। मेरा परिवार, मेरा घर, मेरे बच्चे। इस आयु तक सांसारिक विषयों की धूल पूरी तरह आत्मा स्वरुप दर्पण को ढक लेती है जैसे दर्पण कभी था ही नहीं। शरीर के साथ साथ आत्मिक शक्ति भी शिथिल हो जाती है और मन जो पहले से ही शक्तिशाली था अब स्वतन्त्र हो कर जहाँ चाहता है मनुष्य को भटकाता है। मन के पीछे लगकर मनुष्य चाह कर भी ईश्वरीय मार्ग का अनुसरण नहीं कर पाता। जन्म से पहले तो मानव ईश्वर से विनती करता है और जन्म के साथ ही एक अग्नि कुंड से निकल कर वह इस संसार स्वरुप अग्नि कुंड में उतर जाता है। स्वयं ही चारों ओर मैं, मेरा की दीवारें खींच कर, स्वयं को कर्ता मान कर ईश्वरीय सत्ता से चाहे अनचाहे दूर होता जाता है। काल का तो स्वभाव है, कर्त्तव्य है आत्मा को ईश्वर से दूर रखना, वह अपने कर्त्तव्य पर पूरा है परन्तु हम अपने कर्त्तव्य पर न पहले पूरे थे न आज। हाँ-ना की स्थिति में समय निकल जाता है और फिर आदमी पछताता है। काल के सामने आते ही और समयावधि के लिए गिड़गिड़ाता है परन्तु जो बीत गया उसे आज तक कौन वापस ला पाया है? दास को याद है कि दसवीं कक्षा में मेरे हिन्दी के अध्यापक व्यंग्यपूर्ण तरीके से एक प्रश्न पूछा करते थे कि क्या समय को किसी ने देखा है? न करने पर वे बताते थे कि समय एक विशालकाय मानव की तरह है जो अपने पूरे शरीर पर तेल मले हुए है। उसके सारे शरीर पर बाल नहीं हैं अपितु उसके माथे पर बालों का एक गुच्छा मात्र है। जो इस गुच्छे को पकड़ लेता है समय उस के वश में हो जाता है। जो चूक जाता है वह फिसलकर पीछे जा गिरता है और

इससे पहले कि वह दोबारा उठकर संभले समय निकल जाता है और मानव उसका पीछा ही करता रहता है समय दोबारा हाथ नहीं आता।

पूर्ण सन्त-महापुरुषों का मानना है कि कलयुग में जहाँ ईश्वर की प्राप्ति बहुत कठिन है वहीं बहुत सरल भी है। प्राचीन युगों में क्योंकि मनुष्य की आयु बहुत हुआ करती थी इसलिए उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ता था ईश्वर के साथ एकीभाव होने के लिए। कई कई सौ साल तपस्या के बाद भी ईश्वर के दर्शन नहीं होते थे। जैसे जैसे युग बीते आयु घटती गई। कलयुग में मानव की आयु दिनों दिन घटती जा रही है इसलिए सन्त-महात्माओं से सहज में ही नाम, शब्द भी प्राप्त हो जाता है। भक्ति की विधियाँ भी सरल हो गई हैं, सहज हो गई हैं बस जरुरत है तो दृढ़ता की। दृढ़ निश्चय करके यदि मार्ग पर मनुष्य चल निकले तो मंजिल कभी तो मिलेगी? यदि चले ही नहीं तो पहुँचेंगे कैसे? चलना तो पड़ेगा। गुरु साहिब कहते हैं:-

"नानकु नामु जहाज है चढ़ै सो उतरहि पारू।।"

पार उतरने के लिए जहाज पर सवार तो होना ही पड़ेगा। बेशक नाम का जहाज हमें भव पार करवा सकता है, हमें आने जाने के चक्र से मुक्त करवा सकता है परन्तु उसमें सवार होने की कोशिश तो हमें ही करनी पड़ेगी। सन्त-महात्मा इस जहाज पर सवार होने के लिए हमें लगातार आवाज़ें दे रहे हैं, प्रेरित कर रहे हैं परन्तु हम ही इस पर सवार नहीं होते तो इसमें दोष किसका है? यकीनन इसमें दोष हमारा ही है। एक बहुत ही सुन्दर दोहा है:-

"इंद्रिअन के बस मन रहे मन के बस रहि बुध।
कहओ धिआन कैसे लगे ऐसा जहा विरूध।।"

अर्थात् काल ने मन को इन्द्रियों के जाल में ऐसा फांस रखा है कि

वह विषय विकारों के जाल से निकल नहीं पाता। हमारी बुद्धि चंचल मन के वशीभूत है। यही कारण है कि हमारा ध्यान टिकता नहीं है। जब अंतर में इतना द्वंद्व चल रहा हो तो मन टिक भी कैसे सकता है? हमारी आत्मिक ऊर्जा नित्य नौ द्वारों से इस स्वप्न तुल्य संसार में फैल रही है जिसको रोक कर आरोहण करवाने से ही अध्यात्मिक यात्रा की जा सकती है परन्तु पाँच चोरों के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। तृतीय पातशाह श्री गुरु अमरदास जी महाराज समझाते हैं:-

"इसु देही अंदरि पँच चोर वसहि,
कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा।।
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि, कोइ न सुणै पुकारा।।"

साहिब फर्मान करते हैं कि इस शरीर में पाँच चोरों ने अपना निवास स्थान बना रखा है और नित्य प्रति हमारा अनमोल खज़ाना लूट रहे हैं परन्तु हम मनमति आत्मा की पुकार नहीं सुनते और इस चोरी से, इस लूट से अनजान बने हुए हैं। यही नहीं, जाने अनजाने हम इन्हीं चोरों का साथ देते हैं।

इतिहास इस बात का गवाह है कि युगों की भक्ति करने के बाद भी इन पाँच चोरों से छुटकारा नहीं मिलता क्योंकि जब तक मन अपने स्रोत तक नहीं पहुँचता उसकी गिरह जो आत्मा के साथ बँधी हुई है वह नहीं खुलती और आत्मा अध्यात्मिक मण्डलों की यात्रा नहीं कर पाती। यदि मन थोड़ा बहुत टिकता भी है तो यह पाँच चोर अपना वार चला देते हैं और मनुष्य उसमें ऐसा फँस जाता है जैसे मकड़ी के जाले में कोई पतंगा एक बार फँसे तो जितना छूटने की कोशिश करता है बंधन उतने अधिक मजबूत होते जाते हैं। इन पाँच चारों के बारे में यहाँ विस्तारपूर्वक चर्चा करना उचित है।

काम

जिसने भी मानव को सामाजिक पशु की संज्ञा दी है वह निश्चित ही कोई जागृत पुरुष रहा होगा। पशु जीता है काम के आस पास। यही उसके जीवन का मूल केन्द्र है। पशु जन्म लेता है, दूसरों को जन्म देता है और फिर मर जाता है। ऐसा ही पेड़ पौधों के साथ भी है। किसी दूसरे को जन्म दे कर अपना स्थान लेने के लिए छोड़ जाना ही इनका लक्ष्य है। यदि कोई मानव भी इसी प्रकार जी रहा है कि किसी और को जन्म दे और मर जाए तो मेरे हिसाब से सामाजिक पशु की संज्ञा ठीक ही है। अगर देखा जाए तो हमारी समस्त आयु का जीवन केन्द्र भी यौवन के आस पास ही रहता है क्योंकि हमारी जीवन ऊर्जा हमारी कामेंद्रि के आस-पास ही एकत्र रहती है। वह ऊर्जा या तो प्रजनन में खर्च हो सकती है या वह ऊर्जा शरीर के ऊपरी भागों में गतिमान हो सकती है और यह ऊपर के उन मण्डलों में पहुँच सकती है जहाँ सत्य के फूल खिलते हैं। भक्त कबीर साहिब कहते हैं:-

भक्ति बिगारी कामीआं इंद्री केरे सवाद,
हीरा खोया हाथ से जनम गवाया बाद।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

पाँच चोरों में सबसे भयानक है 'काम'। काम एक ऐसा चोर है जो बहुत तेजी से वार करता हैं और इसका वेग इतना तीव्र होता है कि घोर तपस्या करने वाले, बहुत शक्ति वाले योगी भी इससे बच नहीं पाते। इतिहास साक्षी है कि जब भी किसी ने घोर तपस्या करने का प्रयत्न किया तो देवताओं ने कामदेव व रति का सहारा लेकर उस तप को भंग करने की कोशिश की और बहुधा सफल रहे। इस संदर्भ में

बहुत से नाम दिमाग में आते हैं परन्तु ऋषि पराशर व ऋषि विश्वामित्र का यहाँ मैं ज़िक्र करना चाहूँगा। ऋषि पराशर बहुत ही बड़े तपस्वी माने गए हैं। घोर तप करने के बाद जब वह वापस लौट रहे थे तो रास्ते में एक नदी पड़ती थी। नदी पार करने के लिए ऋषि नदी के तट पर बँधी एक नाव के पास गए तो देखा कि एक नवयौवना उस में बैठी है। ऋषि ने कहा कि हे कुमारी! मुझे नदी पार जाना है केवट को बुलाओ। लड़की ने कहा ऋषिवर! केवट मेरे पिता हैं और वे आज अस्वस्थ हैं इसलिए मैं काम पर आई हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपको नदी पार उतार दूँ? ऋषि ने हामी भर दी व नाव में सवार हो गए। जब नाव नदी की धारा में पहुँची तो वर्षों तप में लीन रहने वाले ऋषि पराशर की नज़र उस नवयौवना पर पड़ी। उसका फूटता यौवन देखकर ऋषि के अंतर में गहरे दबा हुआ काम ज्वालामुखी की तरह फूट निकला। उन्होंने नवयौवना के सामने अपना घिनौना प्रस्ताव रखा। लड़की ने जब इंकार किया तो ऋषि ने क्रोध में आकर श्राप देने की धमकी दे डाली। ऋषि को क्रोधित देख कर सुकुमारी ने न चाहते हुए भी हामी भर दी। ऋषि जैसे ही उसके पास आए तो लड़की ने कहा कि यदि किसी ने देख लिया तो मेरी व मेरे परिवार की बहुत बदनामी होगी। ऋषि ने कहा कि बीच नदी के इस नाव पर मेरे व तुम्हारे सिवा और कोई भी नहीं है। लड़की ने कहा कि यह आकाश, यह सूर्य व नभचर पक्षी भी तो हमारे इस कृत्य के गवाह बनेंगे। ऋषि ने नदी का जल लेकर हवा में उछाला और चारों ओर कोहरा छा गया। धुन्ध छा गई। यहीं से ऋषि पराशर का नाम धुन्ध ऋषि भी पड़ा। इस पर लड़की ने कहा कि ऋषिवर मैं नीच जाति की हूँ और मेरा खान पान भी तामसिक है, मैं मछली बहुत

खाती हूँ इसलिए मेरे मुख से बहुत दुर्गंध आती है इससे आपको बहुत असुविधा होगी। इस पर ऋषि ने उसे वर दे दिया कि आज के बाद तुम्हारे मुख से कभी भी दुर्गंध नहीं आएगी अपितु सुगंधि ही आएगी। इस पर लड़की ने अपने बचाव के लिए आखिरी दाव खेला और कहा कि हे मान्यवर! इस नदी का जल व इसमें रहने वाले जलचर भी तो हमारे इस कृत्य के गवाह बनेंगे, यह तो हमें देख रहे हैं। ऋषि कामाग्नि में इतने अन्धे हो चुके थे कि अपनी तुच्छ इच्छा की पूर्ति के लिए अपने तपोबल से नदी का पानी सुखा दिया और अपनी काम पिपासा शान्त की। उस लड़की के गर्भ से इस सम्बन्ध के बाद जो संतान पैदा हुई वह महाऋषि व्यास कहलाई जोकि महाकाव्य महाभारत के रचियता माने जाते हैं।

ऋषि विश्वामित्र व मेनका के प्रेमालाप की कथा कौन नहीं जानता। ऋषि का तप भंग करने के लिए देवराज इन्द्र ने मेनका को भेजा और ऋषि उसके जाल में ऐसा फंसे कि ब्रह्म ऋषि होने के लिए किया जा रहा तप तक भूल गए। कहने का अर्थ यह है कि यह काम एक ऐसी अग्नि है जिससे आज तक देवता भी सुरक्षित नहीं रह सके।

जीवन एक ऊर्जा है और यह ऊर्जा नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है और इसी कारण जीवन ऊर्जा अनंत काम वासना बन जाती है। यह काम वासना हमारा निम्नतम चक्र है। यह ऊर्जा निरन्तर ऊपर से नीचे की ओर बह रही है और धीरे-धीरे काम केन्द्रों पर एकत्र होती रहती है। जन साधारण व हठ योगी इस ऊर्जा को इन्हीं केन्द्रों पर बाँधने की कोशिश करते हैं परन्तु यदि जल की धारा को बाँध कर रखने का प्रयत्न किया जाए तो एक दिन आता है कि यह जल पूरी शक्ति से पक्के से पक्के व बड़े से बड़े बाँध को भी तोड़कर

निकल जाता है। सन्त-महात्मा कहते हैं कि इसे रोकें मत बल्कि इसकी धारा का प्रवाह मोड़ दें। रोकना दमन हो जाएगा और दमन से कामशक्ति को वश में नहीं किया जा सकता। एक समय आएगा जब उपद्रव होगा और ज्वालामुखी फूट पड़ेगा और वही होगा जो ऋषि पराशर के साथ हुआ था। यदि शक्ति के लिए मार्ग बना दिया जाए तो दमन नहीं होगा इसलिएं इस ऊर्जा को ऊपर की ओर मोड़ दो। जब ऊपर की ओर मार्ग खुल जाएगा तो सिर्फ ऊर्ध्वगमन होगा, आरोहण होगा और ऊर्जा ऊपर की ओर उठनी शुरू हो जाएगी। जब यह ऊर्जा मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठना शुरू हो जाएगी, नाभि की ओर उठना शुरू हो जाएगी तो धीरे-धीरे काम पर वश सम्भव है।

अब प्रश्न यह है कि काम ऊर्जा को नीचे से ऊपर की ओर कैसे भेजा जा सकता है? काम ऊर्जा या यौन ऊर्जा बह कर जो लाती है वह है सुख, यदि यही ऊर्जा ऊपर की ओरं गमन करने लगे तो वह आनन्द हैं। नीचे की ओर बहती ऊर्जा जो सुख देती है वह क्षणिक है परन्तु आरोहण हो जाए तो जो आनन्द मिलता है वह अनन्त है। योगी लोग जो कपालभाती की क्रिया करते हैं वह इस काम ऊर्जा को नाभि की ओर उठाने में बहुत सहायक होती है। जब भी चित्त पर काम सवार हो तो साँस बाहर फैंक कर पेट को बिल्कुल रिक्त कर लें। जब मूलाधार चक्र व नाभि में शून्य पैदा हो जाता है तो यह ऊर्जा ऊपर की ओर उठना शुरू कर देती है क्योंकि प्रकृति का नियम है कि वह शून्य को तत्काल भर देती है। साँस बाहर फैंकने से जब नाभि पर शून्य पैदा हो जाता है तो मूलाधार चक्र जैसे बन्द हो जाता है। हुज़ूर जो आलथी पालथी मार कर बैठने और सुमिरन करने की विधि

का ब्यौरा देते हैं उसका असल में सिद्धान्त यही है कि पेट से नाभि के करीब शून्य सा स्थापित होता जाता है और ऊर्जा नाभि की ओर उठती जाती है। यह एक दिन का खेल नहीं है। इसके लिए नित्य प्रति का अभ्यास आवश्यक है। जब ऊर्जा ऊपर की ओर उठती है तो शरीर में गहन ताज़गी भर जाती है ठीक वैसी ताज़गी जैसी आदमी निद्रा पूर्ण होने पर महसूस करता है। ऊर्जा के स्खलन के बाद मानव उदासी व शिथिलता अनुभव करता है तो ऊर्जा के आरोहण पर उसे आनन्द का आभास होता है।

जो लोग मूलाधार से ऊर्जा को नाभि की ओर सक्रिय करने में सफल हो जाते हैं उनकी नींद कम हो जाती है, थोड़ी सी नींद से ही ताज़ापन आ जाता है। जब भी चित्त पर काम सवार हो तो साँस बाहर फैंककर पेट को रिक्त कर दो और यही स्थिति कुछ देर बनाए रखो। आप पाओगे कि इससे एक ताज़ापन महसूस होता है, चित्त शान्त हो जाता है। धीरे-धीरे यह ऊर्जा वैसे ही ऊपर की ओर उठना शुरू हो जाती है जैसे घड़े के नीचे के छेद यदि बंद हो जाएँ तो पानी उस में इकट्ठा होता जाता है और घड़ा भरता जाता है ऊर्जा के आरोहण के लिए केवल मूलाधार को बंद करना ही काफी होगा। जिस दिन यह बंद हो गया, निष्क्रिय हो गया ऊर्जा का स्खलन बंद हो जाएगा और ऊर्जा स्वयं नाभि की ओर उठती जाएगी जो कि आनन्द दायक है। इसी का दूसरा नाम कुंडलिनी जागरण है।

जिस दिन यह ऊर्जा इकट्ठी होती हुई हृदय तक पहुँचती है उस दिन आपको महसूस होता है कि आप प्रेम से भर गए। यह स्थिति आपको किसी और को बतलानी नहीं पड़ेगी। जिसके पास भी आप बैठ जाओगे उसे स्वयं अहसास होगा कि आप बदल गए हैं। जिसे भी

आप छू मात्र दोगे वह भी प्रेम से भर जाएगा। यदि कोई दुःखी होगा तो उसे लगेगा कि उसका दुःख-संताप जाता रहा। जब यह ऊर्जा बढ़कर हृदय से कंठ तक पहुँचेगी तो वाणी में माधुर्य आ जाएगा। दो शब्द भी किसी को कह दोगे तो सुनने वाला तृप्त हो जाएगा।

ऊर्जा के आरोहण में एक समय ऐसा आता है कि यह तीसरे तिल में प्रवेश करती है। यह वह स्थिति है जब आपको पहली बार दिखाई देता है, निरत जागृत होती है। पहली बार जिज्ञासु में दर्शन की क्षमता जागती है। ऐसे व्यक्ति के वचनों में तर्क का नहीं अपितु सत्य का बल होता है। न चाहते हुए भी आप उसे सुनने को बाध्य हो जाएँगे क्योंकि उसने जाना है, जिया है, अमृत की बूँद चखी है। अब ऊर्जा इससे ऊपर उठती है तो सहस्रार को छूती है तो उसकी सहस्र पंखुड़ियां मानो खिलना शुरू हो जाती हैं और सहस्रार के खिलते ही आपका व्यक्तित्व आनन्द का झरना हो जाता है। यही वह क्षण है जब मीरा झूमती है, चैतन्य महाप्रभु पागलों की तरह उन्मुक्त हो कर नाच उठते हैं।

❖ ❖ ❖ ❖

क्रोध

कबीर साहिब अपनी वाणी में समझा रहे हैं:-

"कामी क्रोधी लालची इनु से भक्ति न होय।।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति वरन कुल खोय।।"

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

साहिब कहते हैं कि जिसके हृदय में काम, क्रोध, लोभ है उसका भक्ति करना न करने के समान है। कोई शूरवीर ही इन चोरों से लोहा ले कर इन्हें पछाड़ सकता है। सांसारिक बुराईयों या दुःखों से लड़ने वाला वीर नहीं कहलाता बल्कि शूरवीर वह है जो अपने अंतर की बुराईय्रों से लड़कर जीतता है।

मानव जीवन में क्रोध का सबसे बड़ा कारण है तृष्णा व हताशा। प्रत्येक मानव अपने जीवन में सुखों के पीछे भागता है, सुविधाओं को इकट्ठा करने के लिए दिन रात एक कर देता है और जब उसे मनचाहा परिणाम नहीं मिलता तो उसे हताशा होती है। इसी हताशा के कारण मानव चिड़चिड़ा हो जाता है, बात बात पर क्रोध करता है। क्रोध के आते ही विवेक विदा हो जाता है। क्रोध में मानव वह कर गुजरता है जो होश में वह कदापि नहीं करता। किसी विचारक ने कहा है कि क्रोध शुरू होता है एक मूर्खता से और समाप्त होता है पश्चाताप् पर। पल भर के क्रोध का परिणाम यह होता है कि मनुष्य जीवन भर पश्चाताप् करता है। हुजूर महाराज दर्शन दास जी कहा करते थे कि सही मार्ग दर्शन के बिना की गई भक्ति भी क्रोध की जनक है।

शेख फरीद मसूद शकरगंज का जन्म पाकपटन जिला मुलतान

में हुआ था। आपकी माँ मरियम बहुत ही धार्मिक प्रवृति की थी। उनकी शिक्षा का असर बालक फरीद पर बहुत था। बचपन से ही आपने कुरान शरीफ कंठस्थ कर लिया था। जब जवान हुए तो तपस्या करने के लिए जंगलों की ओर निकल पड़े। बारह साल तक घोर तप किया। बारह साल बाद दिल में विचार आया कि हो सकता है कि बंदगी पूरी हो गई हो तो घर की ओर वापस चल पड़े। रास्ते में उन्होंने देखा कि कुछ चिड़ियाँ दाना चुग रही थीं। गुरु बिना भक्ति अहंकार ही लाती है सो मन में विचार आया कि देखा जाए कि कुछ प्राप्त हुआ भी है या नहीं। मुँह से निकाला,"चिड़ियों मर जाओ" तत्काल चिड़ियाँ मर गईं। फिर कहा,"चिड़ियों उड़ जाओ" और चिड़ियाँ सचमुच उड़ गईं। फरीद साहिब बहुत खुश हुए कि वाकई बंदगी कबूल हो गई है।

जंगल से निकलकर फरीद साहिब एक गाँव के करीब पहुँचे। कुएँ पर एक औरत पानी निकाल-निकाल कर एक ओर उछाले जा रही थी। फरीद साहिब ने औरत से निवेदन किया कि प्यास लगी है जरा पानी पिला दो फकीर दूर से आया है। औरत ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया और यथावत् पानी निकाल-निकाल कर एक ओर उछालती रही। फरीद साहिब ने दो तीन बार फिर से निवेदन किया पर औरत पर कोई असर न हुआ। इस पर फरीद साहिब का अहं जाग गया और उन्होंने क्रोध से कहा कि मैं इतनी देर से पानी माँग रहा हूँ और तुम पानी फैंके जा रही हो। पानी को फैंकना ही है तो फिर निकालने से क्या लाभ? औरत ने कहा कि थोड़ा सब्र करो मेरी बहन का घर जल रहा है उसकी आग बुझाने का यत्न कर रही हूँ। फरीद साहिब ने इधर उधर देखा परन्तु उन्हें कहीं कोई घर जलता

हुआ नजर नहीं आया। उनकी मनोदशा समझ कर औरत बोली कि मेरी बहन का घर बीस कोस की दूरी पर है। इस पर फरीद साहिब क्रोधित हो गए परन्तु औरत ने उनके क्रोध की परवाह न करते हुए अपना काम जारी रखा और कहा कि आग बुझ रही है बस थोड़ा सा और ठहर जाओ। इतना क्रोध करना ठीक नहीं है यहाँ कोई चिड़ियाँ नहीं हैं जिन्हें कहोगे कि मर जाओ तो मर जाएँगी और कहोगे कि उड़ जाओ तो उड़ जाएँगी। फरीद साहिब को जैसे साँप सूंघ गया, बोलती बंद हो गई। औरत ने बाबा फरीद को पानी पिलाते हुए कहा कि अहंकार ऐसा घुन है जो तपस्या को खा जाता है और ऊपर से ईश्वर पर शक? यह तो वह अपराध है जो ईश्वर के घर में अक्षम्य है। फरीद साहिब को बहुत धक्का लगा और उन्हें अहसास हो गया कि उनका तप व्यर्थ हो गया। कबीर साहिब कहते हैं कि क्रोध की एक तीली से करोड़ों नेक कर्म जल कर खाक हो जाते हैं। एक बार अहं करनें से वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जाता है।

कोटि करम लागै रहैं एक क्रोध की लार,
किया कराया सब गया जब आया हंकार।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

ऐसे कई कथानक इतिहास में मिल जायेंगे कि एक पल के क्रोध ने युग पलट दिया। गौतम ऋषि एक ऐसा ही नाम है। ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या बहुत सुन्दर थी। उन पर देवराज इन्द्र मोहित हो गए। उन्होंने चन्द्रमा और मुर्गे की सहायता ली। ऋषि गौतम रोज प्रात: प्रभात के समय मुर्गे की बाँग के साथ ही उठकर नदी पर जाकर स्नान करते और तपस्या पर बैठते। एक दिन मुर्गे ने प्रभात से पहले ही बाँग दे दी और प्रतिदिन की तरह गौतम ऋषि उठे और स्नान

करने के लिए नदी की ओर चल पड़े। मौके का फायदा उठाकर इन्द्र गौतम ऋषि का रूप धर कर वहाँ पर पहुँचे और अहिल्या के साथ सहवास कर लिया। यह होनी थी या अनहोनी कि रास्ते में ही गौतम ऋषि को समय का आभास हो गया और वह किसी अनिष्ट की आशंका दिल में लिए वापस चल दिए। जब वह वापस पहुँचे तो उन्होंने इन्द्र के साथ अपनी पत्नी को कामरत देख लिया। यह दृष्य देखते ही ऋषि गौतम जैसे क्रोध से पागल हो उठे। उन्होने इन्द्र को शाप दे दिया। इन्द्र तो मौके की नज़ाकत को देखते हुए वहाँ से भाग गए परन्तु मुर्गा और चँद्रमा ऋषि के हत्थे चढ़ गए। गौतम ऋषि ने चँद्रमा पर अपने गीले अंगोछे से वार किया जिसके निशान आज भी देखे जा सकते हैं। मुर्गे को उन्होने शाप दे दिया कि आज के बाद कोई भी तुम्हारी बाँग पर भरोसा नहीं करेगा। इतने से भी ऋषि का गुस्सा शान्त नहीं हुआ उन्होंने अहिल्या को भी पत्थर की मूर्ति बन जाने का श्राप दे दिया।

कुछ देर बाद जब ऋषि गौतम का क्रोध शान्त हुआ तो उन्हें अपने किए पर बहुत पश्चाताप् हुआ पर तीर कमान से निकल चुका था। अहिल्या ने रोते हुए निवेदन किया कि स्वामी, मेरे साथ तो छल हुआ है इसमें मेरा क्या दोष है? मुझे इतना बड़ा दण्ड क्यों दिया? ऋषि ने कहा कि प्रिय, श्राप तो मैं वापस नहीं ले सकता परन्तु मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि त्रेता युग में जब रामावतार होगा और वह वन में आएंगे तब तुम्हें अपने स्पर्श से इस श्राप से मुक्ति दिलाएंगे। अहिल्या ने कहा कि हे देव, त्रेता युग से पहले तो अभी द्वापर युग आना है क्या मुझे इतना इंतजार करना पड़ेगा श्राप से मुक्त होने के लिए। इस पर ऋषि ने अपने तपोबल से समय का चक्र पलट दिया

और द्वापर से पहले त्रेता युग का अवतरण हुआ। एक पल के क्रोध ने तप तो हरा ही, युग भी पलट दिया।

एक और उदाहरण ऋषि दुर्वासा का भी आता है ज़ोकि अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध थे। ऋषि दुर्वासा अत्राय मुनि के पुत्र थे, आपको शिव का अवतार माना जाता है। एक बार आप पिंडारक तीर्थ पर तप करने गए। वहाँ आप की मुलाकात यादव कुल के नवयुवकों से हुई। नवयुवक बहुत ही अहंकारी थे। उन्होंने ऋषि को देखा तो उनका मज़ाक उड़ाने के लिए उन्होंने एक दूसरे युवक के पेट पर तसला बाँध कर उसे गर्भवती औरत का रूप दे कर ऋषि के पास ले गए और प्रश्न पूछा कि बताओ ऋषि जी कि इस औरत के लड़का होगा या लड़की। ऋषि तो त्रिकालदर्शी थे फौरन ही ताड़ गये कि यह लड़के उनके साथ मज़ाक कर रहे हैं। इस पर उन्हें क्रोध आ गया और क्रोध में उन्होंने शाप दे दिया कि इसके गर्भ से एक मूसल पैदा होगा जो यादव कुल का नाश करेगा। अब जब उन युवकों को अपनी भूल का अहसास हुआ तो वे भागे भागे श्री कृष्ण के पास गए और जाकर सारा माजरा कह सुनाया। प्रभु ने कहा कि साधु का वचन तो अटल है उसे तो स्वयं ईश्वर भी नहीं काट सकते। हाँ, इतना जरूर हो सकता है कि जब यह मूसल पैदा हो तो उसे सागर तट पर ले जाकर पत्थर पर रगड़कर चूरा कर देना तो ही बचाव हो सकता है। याद रखना कि मूसल पूरा का पूरा चूरा हो जाना चाहिए। कुछ समय पा कर गर्भवती औरत बने युवक के गर्भ से वाकई मूसल पैदा हुआ और यादव कुल वालों ने उसे सागर तट पर ले जाकर पत्थर पर रगड़ रगड़ कर चूरा कर दिया। जब उस मूसल का स्वरूप एक छोटी सी लोहे की पत्ती का सा रह गया तो उन्होंने सोचा कि भला इस छोटी सी लोहे की पत्ती से

यादव कुल कैसे नष्ट हो सकता है, वह लोहे की पत्ती उठाकर उन्होंने सागर में फैंक दी। वह पत्ती एक मछली निगल गई। वही मछली एक मछुआरे के हाथ लगी और उसके पेट से उसे वह लोहे की पत्ती मिली। उस लोहे की पत्ती को उसने अपने तीर के सिरे पर लगा लिया और उससे शिकार करने लगा। जो चूरा सागर तट पर रह गया था उससे सागर तट पर तेज धार वाली दूभ उग आई। सागर तट पर उत्सव में आए यादव कुल के लोग मदिरा के नशे में आपस में लड़ पड़े और यह छोटी सी लड़ाई एक भीषण युद्ध में बदल गई और वह उस दूभ को ही तलवार की तरह प्रयोग कर एक दूसरे को काटने कर मर गए। यादव कुल नष्ट होने के बाद जब सारी द्वारिका सागर में गर्क हो गई तो श्री कृष्ण भी जंगलों में चले गए और एक पेड़ के नीचे पैर फैला कर सुस्ताने लगे। प्रभु के पैर में एक पदम था जो दूर से ही चमकता था। उधर वह मछुआरा जिसने अपने तीर के आगे मूसल की बाकी बची हुई पत्ती लगा रखी थी शिकार की घात में झाड़ियों में छिपा बैठा था। गिरिधर के पाँव का पदम चमक रहा था और उसे देख मछुआरे को लगा कि शायद यह शेर की आँख है सो उसने उस पर तीर चला दिया जो श्री कृष्ण के पाँव में लगा जिसके कारण प्रभु ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। इस कथानक से पता चलता है कि पल भर के क्रोध से कुल कैसे नष्ट हो सकता है।

हुजूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी अपने सत्संगों में बहुधा कहा करते हैं कि मनुष्य के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह किसी को प्रेम करने में, प्रेम देने में सदैव देरी करता है। किसी के बारे में अच्छा बोलने में सदा ही देरी करता है परन्तु क्रोध करना हो, बुरा भला कहना हो तो एक क्षण भर की भी देरी नहीं करता। क्रोध

में यदि हम किसी को अपशब्द बोल देते हैं तो बाद में उस कृत्य पर हमें पछतावा होता है। अपने इसी उग्र स्वभाव के कारण ही हम सदा अशान्त रहते हैं, दु:खी होते हैं। मन की चालाकी देखिए कि वह सदा हमें द्वन्द्व के भाव में उलझा कर रखता है।

वास्तव में हमारा उपद्रव क्या है? यह द्वन्द्व का भाव क्या है? इसका अर्थ यह है कि हम सुख को पकड़ना चाहते हैं और दु:ख से सदा ही बचना चाहते हैं। हम सदा इसी कोशिश में रहते हैं कि कहीं सुख हमसे छूट न जाए। परन्तु हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि सुख और दु:ख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब हम सुख को पकड़ते हैं तो वास्तव में हमने दु:ख को पकड़ भी लिया होता है। एक को पकड़ेंगे तो दूसरा हिस्सा भी पकड़ में आ जाएगा। स्वीकार करेगा? सिक्के के दोनों पहलू आपस में एक दूसरे से अलग तो नहीं किए जा सकते। यह मन की कारीगरी है कि वह एक को तो अपनाने को राजी होता है परन्तु दूसरे को स्वीकार करना नहीं चाहता। यही मन का द्वंद्व है। हुजूर महाराज जी कहा करते थे कि हर दु:ख के बाद सुख आता हैं और हर सुख के बाद दु:ख। ठीक वैसे ही जैसे हर दिन के बाद रात का आना निश्चित है। जितना बड़ा सुख होगा उतना ही बड़ा दु:ख भी उसके पीछे-पीछे हमारे जीवन में आ जाता है। मन के इस द्वंद्व से बचने का एक मात्र तरीका यह है कि या तो भक्त कबीर जी की तरह हो जाओ कि न सुख चाहिए और न दु:ख। जब सुख ही नहीं माँगा तो वास्तव में दु:ख से भी मुँह मोड़ लिया। जब सुख की इच्छा ही नहीं रही तो कौन आपको दु:खी कर सकता है? इसलिए या तो भक्त कबीर जी की तरह हो जाओ और यदि कबीर जी की तरह होने में दिक्कत है तो फिर भक्त नामदेव जी की तरह हो जाओ कि

मुझे सुख भी स्वीकार है और दुख भी। इन दोनों ही सूरतों में मानव मन के पार हो जाता है। यदि हम ठीक से मन का यह भेद समझ लें तो हमारे जीवन में क्रान्ति आ जाएगी। मन का भेद यह है कि वह हमेशा चीजों को दो में विभाजित कर देता है। मान-अपमान, सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति, संसार-मोक्ष और फिर कहता है कि एक नहीं चाहिए और दूसरा चाहिए। इस चक्रव्यूह को तोड़ने का एक सरल सा मार्ग यही है कि माँग ही छोड़ दें, जो होता है उसके लिए राजी रहें। यह अत्यंत कठिन है परन्तु असम्भव नही।

लोभ

जब मन लागा लोभ से गया विषय मे मोय,
कहै कबीर बिचारि कै कस भक्ति धन होय।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

लोभ, लालच, लालसा। प्रश्न यह है कि इस लालच का वास्तविक अर्थ क्या है? लालच का अर्थ यह है कि जो मैं हूँ उससे तृप्ति नहीं, कुछ और होना चाहिए। फिर चाहे यह कुछ होना धन का हो, स्वास्थ्य का हो, यश का हो, आनन्द का हो या फिर भगवान का हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लालच का अर्थ है एक तनाव, एक चिन्ता। अपने वर्तमान से असन्तुष्ट आने वाले कल के लिए ही मानव तनाव से तना रहता है। यह तना हुआ चित्त ही लालच से, लोभ से भरा हुआ चित्त है। सब तरह का लोभ व लालच अशान्ति पैदा करता है। ईश्वर प्राप्ति की राह में अशान्ति एक बाधा है। कई लोग अक्सर प्रश्न करते हैं कि मन को क्या लालच दिया जाए कि वह ईश्वर के मार्ग पर चलने लगे? ईश्वर प्राप्ति के लिए भी लालच? क्योंकि हमारा मन लालच को ही समझता है। एक ही भाषा मन को समझ में आती है वह है लालच। इसी कारण हम धन के लिए दौड़ते हैं, यश मान के लिए दौड़ते हैं। इन सब से ऊब जाते हैं तो कहते हैं कि भगवान के लिए कैसे दौड़ें?

जीवन भर हम नश्वर संसार के पीछे भागते हैं। जो नहीं मिलता उसके पीछे भागते हैं और जो मिल जाता है उससे ऊब जाते हैं क्योंकि मन की आदत है दौड़ना, खोजना, हासिल करना और फिर उससे ऊबकर दूसरे लक्ष्य की ओर भागना। इस भाग दौड़ में हासिल कुछ

भी नहीं होता बल्कि हम खो बैठते हैं अमूल्य समय। कैसी विडम्बना है कि कुछ पाने, कुछ उपलब्ध करने की चाहत में वह बहुमूल्य वस्तु खो बैठते हैं जो सदा से हमारे पास थी और हमारी थी।

सिकंदर महान ने सारी दुनिया जीतने की ठानी और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए निकल पड़ा। एक के बाद एक देश जीतता गया और बढ़ता गया। जब अन्त समय आया तो अपने मंत्रियों से कहा कि मेरे हाथ अर्थी के बाहर रखे जाएँ ताकि लोग देख पायें कि दुनियां जीतने वाला सिकंदर महान भी अन्त समय में अपने साथ कुछ नहीं ले जा पा रहा। सारी दुनिया का बादशाह भी ख़ाली हाथ जा रहा है। सारी उम्र जिन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए लड़ाईयाँ जीतीं उनमें से कुछ भी साथ जाने को तैयार नहीं था। जिस शरीर के बल पर अभिमान था वह भी साथ न जा सका।

जीवन का नियम बहुत ही विरोधाभासी है। सदैव ही उल्टे परिणाम मिलते हैं। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति अपनी छाया से भागना चाहे तो जो जितना भागेगा उतना ही पायेगा कि छाया उसके साथ भाग रही है। लोभ से बचने की प्रेरणा सभी देते हैं परन्तु लोभ से बचने का उपाय कोई नहीं बताता। छाया से बचने का एकमात्र उपाय यह जान लेना है कि यह छाया है। छाया के प्रति जागरूकता ही दरअसल उससे अलग होने का एकमात्र उपाय है। जो बचने की जितनी कोशिश करता है वह उतना ही उलझता जाता है और जो बचने की चेष्टा छोड़ देता है वह बच जाता है। यह ऐसा ही है जैसे कोई जीवित आदमी नदी में डूब जाता है मुर्दा नहीं डूबता। मुर्दा नदी पर तैर जाता है। आखिर वह क्या नियम है जो मुर्दा तो जानता है परन्तु जीवित आदमी नहीं जानता? मुर्दे को एक कला आती है कि वह

अपने आपको नदी के हाथों में छोड़ देता है। फिर नदी उसे डुबाती नहीं बल्कि तैराने लगती है। ज़िन्दा आदमी नदी से लड़ता है। लड़कर वह टूट जाता है और डूब जाता है। नदी आदमी को नहीं डुबाती आदमी स्वयं से ही लड़कर स्वयं को नष्ट कर लेता है और डूब जाता है। जो ज़िन्दा आदमी मुर्दे सा व्यवहार करे वह सन्यासी है।

ईसा कहते हैं कि स्वयं को बचाओगे तो खो दोगे और यदि तुम खोने को राज़ी हो तो परम जीवन मिल जाएगा। हम लोग जीवन जीने का लालच लेकर जीते हैं, जीने की तृष्णा लेकर जीते हैं और तिल-तिल करके मरते हैं। जिनके मन में जीवन की तृष्णा है वे जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं उन्हें मिलती है केवल मौत। वे केवल मरते हैं, मरने में ही उनका सारा समय व्यतीत होता है। लेकिन जो जीवन जीने की तृष्णा छोड़ देते हैं उन्हें अमृत के दर्शन हो जाते हैं। जो मृत्यु को स्वीकार कर लेता है उसे अमृत की प्राप्ति हो जाती है। कितनी अजीब बात है कि हम सब मरने से डरते हैं। ऐसा नहीं है कि इस डर से हम मरने से बच जाते हैं। मृत्यु तो निश्चित है। लेकिन इस डर के कारण जो जीवन हमारे निकट होता है उसे देखने से, उसे जानने से हम वंचित रह जाते हैं। हम मृत्यु से डर डर कर जीते हैं और जीवन हमारे निकट से गुज़र जाता है।

दूसरी बात यह है कि जीवन की तृष्णा का अर्थ है भविष्य। सभी तृष्णाओं का सम्बन्ध भविष्य से है। कोई भी तृष्णा, कोई भी वासना अभी नहीं होती, वासना होती ही भविष्य में है। यह इसलिए है कि वासना की पूर्ति के लिए समय चाहिए। जब भी आप कुछ चाहते हैं भविष्य में ही चाहते हैं। जो भी कुछ आपके पास है वह वर्तमान में है और जो कुछ भी आपके अंतर में लालसा है, लोभ है, वासना है उसे

भविष्य में ही चाहा जा सकता है। एक सत्य यह भी है कि यदि चाह न हो तो भविष्य का कोई मूल्य नहीं। दूसरी ओर अगर भविष्य ही न हो तो चाह मर जाती है। कहने का अर्थ यह है कि यदि चाह छूट जाये तो आदमी वर्तमान में आ जाता है। मन का स्वभाव हमें वर्तमान में नहीं रहने देता वरन् भविष्य में दौड़ाता है। कुछ लोग कहते हैं कि आज हम दु:खी हैं पर यह दु:ख सदा नहीं रहेगा, भविष्य में हम सुखी हो जायेंगे। दरअसल यह भविष्य में जीना ही दु:ख का असली कारण है। हम जीते हैं भविष्य में और आज़ चुपके से सरक जाता है और हमें पता ही नहीं चलता। कल आखिर देखा किसने है? कहते हैं:-

"कल नाम काल का है।"

आखिर कल किसने देखा है? कल जब आता है तो वह आज हो जाता है और वास्तव में कल आता ही नहीं। हम सभी दु:खी हैं क्योंकि हमें सुखी होने की कला नहीं आती परन्तु आश्चर्य यह है कि हम दु:खी होने की कला में पारंगत हैं। जो आदमी भविष्य में जीएगा, भविष्य में वासना करेगा वह दु:खी ही रहेगा। भविष्य कभी आता नहीं बस आता हुआ सा दिखाई पड़ता है। जो आता है वह वर्तमान है और जो नहीं आता वही भविष्य है। जीवन दु:ख नहीं है वासना दु:ख है। जितनी अधिक वासनाएं उतना अधिक दु:ख। यदि सच में सुख की चाहत है तो सुख माँगना छोड़ दो फिर आपको कोई भी दु:खी नहीं कर पाएगा। जिसने सुख माँगना छोड़ दिया वह वास्तव में दु:ख की परिधि से बाहर हो गया। हुजूर कहते हैं कि भिखारी की तरह मांगना छोड़ दो। भिखारी कभी सुखी होता है क्या? जीना है तो सम्राट की तरह जिओ और जिसने सुख की चाहत ही छोड़ दी उससे बड़ा सम्राट और कौन हो सकता है?

मोह

पंचम पातशाह अपनी वाणी में जीव को समझाते हैं:-

"जिहवा रोगि मीनु ग्रसिआनो।।
बासन रोगि भवरू बिनसानो।।
हेत रोग का सगल संसारा।।
त्रिबिधि रोग महि बधे बिकारा।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-११४०-४१)

हुजूर पंचम पातशाह समझा रहे हैं कि मछली को जिहवा का स्वाद ले डूबता है क्योंकि उसे हर चीज़ को मुँह में डालने की आदत होती है। भँवरा सुगंधि लेने के चक्कर में फूल के अन्दर ही बंद हो कर मर जाता है। मोह एक ऐसा रोग है जिसमें सारा संसार बंधा है और रजो, सतो व तमो में फँस कर जीव एक दिन यह अमूल्य जीवन गँवा बैठता है।

मोह फंद सब फंदिया कोइ न सकै निरवार,
कोइ साधू जन पारखी बिरला तत्व बिचार।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

कहने का अर्थ है कि इस संसार का मूल ही मोह है, संसार की उत्त्पत्ति का मूल कारण ही मोह है। मोह ममता के कारण हमें वह नज़र नहीं आता जिसे जानने के लिए हमें यह जन्म मिला है। मजे की बात है कि सभी जानते हैं कि सांसारिक रिश्ते-नाते मिथ्या हैं जो लोग हमसे पहले आए थे वे चले गए और एक दिन हमें भी जाना पड़ेगा। जब तक हमारे माता-पिता जीवित रहते हैं हमारा मोह उनके साथ रहता है। यह बन्धन धीरे-धीरे पत्नी फिर पुत्र-पुत्री फिर

पौत्र-पौत्री की ओर सरकता जाता है परन्तु जो हमारा वास्तविक सम्बन्ध है उसे हम कतई भी याद करने की चेष्टा नहीं करते। जो भी हम इस संसार में अर्जित करते हैं उनके साथ हमारा मोह मरते दम तक नहीं छूटता हालांकि हम जानते हैं कि इनमें से कुछ भी हमारे साथ जाने वाला नहीं है परन्तु फिर भी हम यह मोह त्यागने को तैयार नहीं हैं। अभी तो बहुत समय है पहले थोड़ा कमाई कर लें, बच्चों को एक सुरक्षित भविष्य दे दें, उनकी शादी हो जाये फिर अपने बारे में सोचेंगे बस ऐसा सोचते सोचते ही समय हाथ से ऐसे निकल जाता है जैसे कि बालू मुट्ठी से न चाहते हुए भी निकल जाती है और सामने आ खड़ा होता है चौरासी का अनन्त चक्र। भक्त त्रिलोचन जी कहते हैं कि मृत्यु के समय जैसी आदमी की भावना रहती है, जिसमें उसका ध्यान होता है वैसी ही योनि उसके लिए तैयार रहती है।

"अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जो मरै।।
सरप जोनि वलि वलि अउतरै।।
अरी बाई गोबिद नामु मति बीसरै।।
अंति कालि जो इसत्री सिमरै ऐसी चिंता महि जो मरै।।
बेसवा जोनि वलि वलि अउतरै।।
अंति कालि जो लडिके सिमरै ऐसी चिंता महि जो मरै।।
सूकर जोनि वलि वलि अउतरै।।
अंति कालि जो मंदर सिमरै ऐसी चिंता महि जो मरै।।
प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै।।
अंति कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जो मरै।।
बदति तिलोचनु ते नर मुकता पीतंबरू वाके रिदै बसै।।"
(आदि ग्रन्थ, अंग- ५२६.)

वे समझा रहे हैं कि अंतिम समय जिसका चित्त धन में रहता है उसे सर्प की योनि मिलती है। जिसका ध्यान स्त्री में रहता है उसको वेश्या की योनि मिलती है। जो मरते समय अपना ध्यान संतान में रखता है वह सुअर की योनि में पड़ता है और घर बार में ध्यान रखने वाला प्रेत योनि में जाता है परन्तु अन्त काल जिसका ध्यान ईश्वर में रहता है वह मुक्त हो जाता है।

द्वापर युग का महाभारत युद्ध मोह का ही परिणाम है। धृतराष्ट्र पुत्र मोह में इतना अधिक डूबे थे कि वे यह भी सोच न पाए कि धर्म क्या है? और अधर्म क्या है? पुत्र मोह में इतना बड़ा युद्ध हुआ, लाखों लोग मारे गये यहाँ तक कि जिस पुत्र के लिए युद्ध स्वीकारा था वह भी मौत की नींद सो गया

भक्त त्रिलोचन जी की वाणी के संदर्भ में एक दृष्टांत याद आता है। भक्त कबीर साहिब के गुरू रामानन्द जी बहुत ही उच्च कोटि के महापुरुष थे। वे अक्सर अपने सेवकों से कहा करते थे कि जब उनका अन्त समय आयेगा तो उन्हे लेने के लिए स्वर्ग से पुष्पक विमान आयेगा, आकाश से फूलों की वर्षा होगी और जब वे स्वर्ग में पहुँचेगे तो शंखनाद होगा, घड़ियाल बजेंगे। समय बीता और गुरु रामानन्द जी का अन्त समय आया परन्तु पुष्पक विमान न उतरा, न पुष्प वर्षा हुई और न ही शंख नाद हुआ और न ही घड़ियाल बजा। सेवक बहुत हताश हुए। उनके मन में अपने गुरु के प्रति शंका आ गई। आपस में सलाह करके वे सब इकट्ठे हो कर कबीर साहिब के पास गए। कबीर साहिब ने उनकी बहुत आवभगत की और फिर आने का कारण पूछा। सेवकों ने सारी बात कह सुनाई और निवेदन किया कि आप ही हमारी शंका का समाधान करें। कबीर साहिब ने ध्यान लगाया

और कहा कि गुरुदेव ने जो भी कहा है वह सत्य है। जब गुरु साहिब स्वर्गारोहण करेंगे तो वही होगा जो गुरुदेव ने बताया है। सेवक और भी शंका में पड़ गए। कबीर साहिब उनकी मनोस्थिति समझ गए और कहा कि अभी गुरु साहिब स्वर्ग पहुँचे ही नहीं तो वह सब कैसे होगा जो गुरु साहिब ने कहा था?

कबीर जी के इतना कहने पर सेवकों ने कहा कि कबीर जी गुरुदेव तो शरीर त्याग चुके और आप कहते हैं कि वे अभी स्वर्ग नहीं पहुँचे। यह बात कुछ समझ में नहीं आती कृप्या ज़रा विस्तार से समझायें। कबीर साहिब ने कहा कि डेरे के बाहर एक अमरूद का पेड़ है उस पर एक ही अमरूद रह गया है जाओ उसे तोड़ कर लाओ। अमरूद तोड़ कर लाया गया। कबीर साहिब ने अमरूद को काटने का आदेश दिया। अमरूद काटते ही उसमें से एक सुंडी निकल कर ज़मीन पर गिर कर मर गई। कबीर साहिब ने विधिवत् उस सुंडी का अंतिम संस्कार करने का आदेश दिया। जैसे ही संस्कार किया गया पुष्पक विमान उतर आया और आकांश से फूलों की वर्षा होने लगी, शंखनाद हुआ और घड़ियाल भी बजने लगे। रामानन्द जी के सेवक बहुत हैरान हुए उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। निवेदन करने पर कबीर साहिब ने खुलासा किया कि जब गुरुदेव का अंतिम समय आया तो एकाएक उनका ध्यान डेरे के बाहर लगे अमरूद के पेड़ पर लगे अमरूद पर जा पड़ा व उनके दिल में अमरूद खाने की इच्छा जागृत हो गई। इसी कारण उन्हे अमरूद में सुंडी का जन्म धारण करना पड़ा। सुंडी का संस्कार करते ही उनकी आत्मा आज़ाद हो गई और वही हुआ जैसा गुरुदेव क़हा करते थे। कहने का अर्थ यह है कि यदि गुरूदेव रामानन्द जैसे महापुरुष को सुंडी का जन्म लेना

पड़ सकता है तो हम साधारण जीवों की बिसात ही क्या है। मनुष्य पैदा होने से लेकर मृत्यु तक मोह में ही लिप्त रहता है। हमारे आसपास बहुत से जानवर हैं वे भी अपने नवजात शिशुओं का ध्यान रखते हैं, उनमें मोह होता है परन्तु तब तक ही जब तक कि बच्चा स्वयं अपनी देखभाल करने लायक नहीं हो जाता। हम उन पशुओं से कोई सबक नहीं लेते। सन्त-महापुरुष सदा से कहते आये हैं कि सवाल यह नहीं है कि अपनी संतान से, अपने माता-पिता से, अपनी पत्नी से, पति से मोह न करो लेकिन यह मोह तब तक ही अच्छा है जब तक आप इसमें लिप्त नहीं होते। एक कहावत है:-

"एक बाप दो बेटे पर किस्मत जुदा जुदा।"

आप अपने बच्चों को पाल सकते हो, अच्छे संस्कार दे सकते हो, अच्छी शिक्षा दे सकते हो लेकिन उसकी किस्मत नहीं बदल सकते। उसे इस संसार में वही मिलेगा जो विधि ने उसके प्रारब्ध के अनुसार उसकी तकदीर में लिख दिया है। यदि हम किसी की तकदीर बदल सकते तो सभी धनी आदमी सुखी होते, उनकी औलाद सुखी होती। हमको करना तो यह चाहिए कि हम उनको उनके हाल पर छोड़ दें परन्तु हम करते यह हैं कि सारा जीवन मोह वश उन्हीं का भला सोचते-सोचते एक दिन मर जाते हैं। अन्त समय में तो अपनी पत्नी, अपने बच्चे भी हमें अपनी आयु का एक पल भी दान नहीं कर सकते। नवम् पातशाह समझा रहे हैं:-

"घर की नारि बहुतु हितु जा सिऊ सदा रहित संगि लागी।।
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग- ६३४)

"मात पिता सुत बंध जन हितु जा सिऊ कीना।।
जिओ छूटिओ जब देह ते डारि अगनि महि दीना।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-७२६-२७)

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जिस पत्नी के साथ हमारा सब से अधिक मोह होता है प्राण तजते ही वह भी इस शरीर को दो घड़ी अपने पास रखने को राज़ी नहीं होती। फिर कहते हैं कि जिस परिवार के लिए हम मोह पाश में बंधे अपना बहुमूल्य समय गँवा रहे हैं एक दिन ऐसा आएगा वही हमें अग्नि के हवाले कर देगा।

❖❖❖❖

अहंकार

प्रत्येक सन्त-महापुरुष ने, प्रत्येक धर्म ग्रन्थ ने, प्रत्येक शास्त्र पुराण ने यही कहा है कि मानव देह चौरासी लाख योनियों में से सबसे उत्तम है। ईश्वर ने इसे अपना स्वरूप देकर इस धरती पर भेजा है। जितने तत्व बाकी योनियों में है उससे अधिक इसमें है। इसमें सबसे उत्तम तत्व आकाश तत्व है। इस देही को प्राप्त करने के लिए देवी देवता भी तरसते हैं क्योंकि इसी जन्म में ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। मनुष्य का जन्म इसलिए हुआ कि वह भक्ति करके सृष्टि के कर्ता को जान सके लेकिन मन के वश में होकर मनुष्य स्वयं को कर्ता समझने लगता है। स्वयं को कर्ता मानना ही वास्तव में अहंकार है। अहंकार सदा ही मनुष्य को ईश्वरीय सत्ता को मानने से, स्वयं को खोजने से, अपने स्रोत में लीन होने से रोकता है। कबीर साहिब कहते हैं:-

कंचन तजना सहज है सहज त्रिया का नेह,
मान बढ़ाई ईरखा दुरलभ तजनी ऐह।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

अर्थात् जीवन में मनुष्य सोना त्याग सकता है और सहज ही अपनी स्त्री का भी त्याग कर सकता है परन्तु अभिमान, ईर्ष्या का त्याग करना बहुत ही कठिन है। मनुष्य को वास्तविक मार्ग से भटकाने के लिए मन मनुष्य को कभी भी वर्तमान में जीने नहीं देता। आप कभी आराम से बैठकर ध्यानपूर्वक सोचिए या तो आप भूतकाल में होते हो या भविष्य काल में होते हो। आप या तो उसके बारे में सोचोगे जो बीत गया है, गुजर गया है, जो अब नहीं है या फिर

उसके बारे में सोचते हो जो अभी आया ही नहीं, जो अभी आना है अर्थात् भविष्य में। वर्तमान में आप नहीं जीते या यूँ कह लें कि मन का यह फंदा है कि वह हमें वर्तमान से दूर रखने की कोशिश करता है और सदा सफल रहता है। यह इसलिए कि वर्तमान द्वार है सत्य का, अस्तित्व का। इसे थोड़ा समझने की जरुरत है। अस्तित्व में न तो भूतकाल होता है क्योंकि वह तो जा चुका है और न ही भविष्य क्योंकि वह अभी आया ही नहीं। दूसरे शब्दों में इसे समझने की कोशिश करते हैं। आप यह नहीं कह सकते कि ईश्वर था या यह नहीं कह सकते कि ईश्वर होगा। ईश्वर तो सदा से है और इसी 'है' से मन हमें भटकाता रहता है मन वर्तमान में टिक नहीं सकता। वह तो अतीत में भागता है या फिर भविष्य में।

मन को वर्तमान में ठहराना ही वास्तव में ध्यान है, समाधि है। चित्त को यहाँ वहाँ भटकाए रखना चंचलता है। अब प्रश्न है कि आखिर हम वर्तमान से हर बार चूक क्यों जाते हैं? इसका सबसे बड़ा कारण है लोभ, लालच क्योंकि लोभ सदैव भविष्य में ही पाया जा सकता है। दूसरा सबसे बड़ा कारण है अहंकार। अहंकार सदा भूतकाल की बात करता है। जो पाया, जो मिला, जो बनाया। मैं फलां आदमी का बेटा हूँ अहंकार सूचक वाक्य है, हूँ क्योंकि हो चुका है। मेरे पास इतने करोड़ रूपये हैं। इकट्ठे किए हैं तभी हैं, भविष्य में होंगे या नहीं कह नहीं सकते। अहंकार सदैव आदमी को भूतकाल में ले जाता है। वह हमारे अतीत के कर्मों का संग्रह है जिसे हमने जोड़ जोड़कर तैयार किया है। यदि थोड़ा गौर करके देखा जाए तो लोभ व अहंकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब लोभ पूरा होगा वह अहंकार बन जाएगा। जो अहंकार है वह आपका लोभ था जिससे

होकर आप गुजरे हो। कहने का अर्थ यह है कि सारे लोभ का संग्रह अहंकार है।

आप कभी बुजुर्ग आदमी को देखिए वह सदैव अहंकार में जीता है क्योंकि वह आपको सदा अतीत में मिलेगा। भविष्य में तो ज़ा नहीं सकता क्योंकि आगे तो मौत है और मौत में लोभ असम्भव है। बूढ़े आदमी का मन सदैव अतीत में भटकता है। पुराने दिनों की, जवानी के दिनों की बातें याद कर करके भ्रमित होता रहता है। भविष्य में तो वह देखना ही नहीं चाहता क्योंकि वहाँ तो मौत दिखाई देती है। जवान आदमी सदा भविष्य में देखता है लोभ उसे भविष्य में भटकाता है। बूढ़े ने तो यात्रा कर ली है अहंकार की, जवान अभी करेगा। तो जवान सदा लोभ में जीता है और बूढ़ा अहंकार में। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है अहंकार सख्त होता जाता है। यही कारण है कि बुजुर्ग आदमी क्रोधी व चिड़चिड़े होते हैं क्योंकि उनके अहंकार की गाँठ सख्त हो गई है और यही गाँठ क्रोध व चिड़चिड़ापन पैदा करती है, हताशा पैदा करती है।

वर्तमान में आने के लिए संकल्प की जरुरत है दृढ़ता की परम आवश्यकता है। लोभ और अहंकार दोनो ही वर्तमान से भटकाने वाले हैं और केवल वर्तमान में ही ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। यदि हम एक क्षण के लिए भी वर्तमान में पहुँच जाएँ जहाँ न अतीत हो और न भविष्य यदि कोई हो तो बस वर्तमान हो। बस यही एक क्षण ऐसा होता है ज़ब परमात्मा आपके अंतर में समा जाता है। इसमें जन्मों का फेर नहीं है एक क्षण में ही वह सामने आ कर खड़ा हो जाता है। हमने अपने शरीर के दरवाज़े बंद कर रखे हैं। दरवाज़ा खोलने में कितनी देर लगती है? यह तो वही बात हुई कि कोई

दरवाज़ा बंद करके अन्धेरे में बरसों से बैठा है और कहता है कि कोई उपाय बताओ कि सूरज भीतर आ जाए। सूरज तो भीतर आने को तैयार बैठा है कमी है तो बस द्वार खोलने की। ईसा कहते है, "*Knock and thy will be opened for you.*" अब प्रश्न है कि उसे खोया है हमने जन्मों जन्मों से, एक पल में कैसे मिल जाएगा? इतने जन्मों के पाप पल में कैसे मिट सकते हैं? रोशनी इसलिए बाहर है क्योंकि दरवाज़े खिड़कियाँ बन्द हैं। दरवाज़ा खुलेगा तो यह सम्भव नहीं कि सूरज की रोशनी बाहर ही ठहरी रहे। हजारों जन्मों के पाप भी एक क्षण वर्तमान में खड़े व्यक्ति को परमात्मा से मिलने से नहीं रोक सकते। पाप असल में क्या है कि हम वर्तमान में नहीं हैं या तो अतीत में हैं या भविष्य में हैं। एक कमरे में हजारों सालों से अन्धेरा हो, उसमें एक दीपक जलाने से अन्धेरा यह नहीं कह सकता कि मैं हजारों सालों से यहाँ हूँ और अब इतनी अवधि ही दीपक जलेगा तो मैं यहाँ से जाऊँगा। अन्धेरा एक रात का हो या हजार साल का, दीपक जलते ही उसे जाना होता है, एक छोटे से दीपक की रोशनी घने से घने अन्धेरे को चीर देती है।

हुजूर महाराज दर्शन दास जी समझाया करते थे कि मन से लड़कर आज तक कोई नहीं जीत पाया। इन पाँच चोरों का दमन करने से भी बात नहीं बनती। इंसी संघर्ष में पूरा जीवन बीत जाता है। अच्छा यही है कि इनके तीव्र प्रवाह को मोड़ दिया जाये। वह कैसे?

"औरत ईमान, पुत्र निशान, दौलत गुजरान।"

मृत्यु लोक में जन्म लिया है तो इन सबसे वास्ता पड़ेगा ही। काम शक्ति को केवल संतान उत्पत्ति तक ही सीमित कर दो। क्रोध को इस

तरह परिवर्तित कर दो कि दीन-दुखियों की सहायता के लिए लड़ाई हो और लोभ हो ईश्वर के नाम की माया इकट्ठी करने का, मोह हो गुरु की साध संगत से और अहं को परिवर्तित कर दो अपने गुरु पर मान तान में और मन?

"मन वेचै सतिगुर के पासि।।
तिस सेवकु कै कारजु रासि।।"

सभ किछु घर महि

समझै तो घर मे रहै परदा पलक लगाय,
तेरा साहिब तुझमे अंत कहूं मत जाय।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

ईश्वर के बांरे में जितना भ्रम आज तक फैलाया गया हैं, कल्पित कहा गया है, गढ़ा गया है शायद और किसी चीज़ के बारे में उतना नहीं है। परमात्मा के बारे में ज़ितनी कल्पनाएँ प्रचलित हैं उतनी शायद और किसी के बारे में नहीं हैं। अगर सही अर्थों में देखा जाए तो परमात्मा के बारे में सत्य कहा ही नहीं जा सकता, जो भी हम कहते हैं वह कहने भर से ही असत्य हो जाता है। कारण यह है कि ईश्वर के बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता उसे तो केवल जाना जा सकता है। शब्द तो असमर्थ हैं। हम जो भी कहते हैं वह इस भौतिक संसार से आगे नहीं जा सकता। शब्दों के माध्यम से संसार से आगे की बात नहीं कही जा सकती। जो भी सम्बोधन हम ईश्वर को देते हैं ईश्वर उससे कहीं भिन्न है। लेकिन हमारी विडम्बना यह है कि हमारे पास और शब्द भी नहीं हैं। जीवन के इन्हीं काम चलाऊ शब्दों का प्रयोग करके हम स्वयं के ज्ञानी होने का अहसास कर लेते हैं और गर्व से छाती फुला लेते हैं। हुजूर महाराज दर्शन दास जी कहा करते थे कि ईश्वर तो गूँगे की मिठाई की तरह है जिसका स्वाद वह महसूस तो कर सकता है लेकिन किसी को बता नहीं सकता। अगर कोई बता रहा है तो समझो कि वह गूँगा है ही नहीं बस गूँगा होने का नाटक कर रहा है। जो भी उसे पा जाता है वह मौन हो जाता है।

ईश्वर का वर्णन करने के लिए उसके पास शब्द नहीं रहते। इस बारे में कबीर साहिब बहुत स्पष्ट कहते हैं:-

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात,
सो गूंगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख सवाद।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

हम लोगों के साथ समस्या यह है कि हम बोलते अधिक हैं सुनते केवल नाम मात्र ही हैं। हम सब जिंदा हैं लेकिन यदि हम याद करने की कोशिश करें तो हमें अपने जीवन काल में कोई भी ऐसा क्षण नहीं मिलेगा जिस क्षण हम किसी न किसी रुप में बोल न रहे हों, कभी बाहर, कभी भीतर। हम बोलते हैं, नहीं बोलते तो सोचते हैं, नहीं सोचते तो सपने देखते हैं लेकिन यह बोलना किसी न किसी स्तर पर जारी रहता है और जिसके अंतर में बोलना जारी है वह ईश्वर को पहचान नहीं पाता। उसकी पहचान तो नि:शब्द में, मौन में ही सम्भव है उसे तो तभी जाना जा सकता है जब शब्द नहीं होते, विचार नहीं होते, स्वप्न नहीं होते तभी उसका अनुभव होता है। आप ही बताएँ जिसे मौन में जाना है उसे शब्दों में कैसे बताया जा सकता है? बोलकर या लिखकर कैसे बताया जा सकता है? यही कारण है कि धार्मिक विवाद में नास्तिक सदैव जीत जाता है और आस्तिक सदैव हारता है क्योंकि नास्तिक इंकार करता है ईश्वर के अस्तित्व से और इंकार शब्दों में किया जा सकता है। आस्तिक ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करता है और स्वीकृति को शब्दों में बता पाना कठिन है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। जितने सन्त-महापुरुष इस देश में हुए हैं उतने किसी अन्य देश में नहीं हुए। इतनी धार्मिकता होते हुए भी हम अपने बच्चों को पढ़ाते हैं कि ईश्वर है। कई देशों में तो

यह सिखाया जाता है कि ईश्वर नहीं है परन्तु वास्तव में हम दोनों एक से ही हैं, क्या हम जानते हैं कि ईश्वर है? शायद नहीं। हम ने तो अपने बुजुर्गों के कहने पर विश्वास किया है कि ईश्वर है परन्तु उसे हमने जाना कब? जब तक किसी के सम्बन्ध में जाना न जाए तब तक कहना कितना सही है? हुजूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी ने एक बार अपने सत्संग में कहा था कि उधार के ज्ञान से कभी किसी का भला नहीं होता। ज्ञान तो वास्तव में वह है जिसे ज्ञात हो और जो जाना ही नहीं उसके बारे में पढ़कर, सुनकर स्वयं को ज्ञानी मान लेना कहाँ तक उचित है? इस संदर्भ में एक कथानक याद आता है।

एक बार किसी सम्राट को किसी व्यक्ति ने आकर कहा कि आपने सारी पृथ्वी पर अपनी विजय पताका फहरा दी है बस एक ही चीज़ की कमी रह गई है वो यह कि आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। सम्राट ने उससे पूछा कि उसके लिए मुझे क्या करना चाहिए? उस आदमी ने कहा कि मैं आपको वह वस्त्र लाकर दे सकता हूँ। सम्राट का लोभ जाग उठा कि पृथ्वी तो जीत चुका हूँ यदि देवताओं के वस्त्र भी मिल जाएँ तो सोने पर सुहागा हो जाएगा। सम्राट ने अपनी खुशी छिपाते हुए कहा कि खर्च कितना होगा? आदमी ने कहा कि महाराज खर्च तो बहुत होगा, लेकिन आपको भला किस चीज़ की कमी है? और देवताओं के वस्त्र तो यदि अपना सब कुछ देकर भी मिलें तो भी सस्ते हैं। सम्राट को तो जैसे काटो खून नहीं पर लोभ ने फिर धक्का मारा और उसने फिर पूछा कि बताओ कितना खर्चा होगा और कितना समय लगेगा। आदमी ने कहा कि महाराज खर्चा लगभग दस हज़ार स्वर्ग मुद्राएँ होगा और लगभग छः माह के समय में यह वस्त्र आप तक पहुँच जाएंगे।

सम्राट को विश्वास तो नहीं हो रहा था परन्तु लोभ के वशीभूत उसने उस आदमी को दस हज़ार स्वर्ग मुद्राएँ दिलवा दी और कहा कि ध्यान रहे छः माह की अवधि के अन्दर यदि वस्त्र मुझ तक न पहुँचे तो तुम्हारा सिर कलम करवा दिया जाएगा। जब तक तुम मुझे वस्त्र नहीं पहुँचाते तुम्हारे घर पर मेरे सिपाहियों का पहरा रहेगा ताकि तुम मुझे धोखा न दे सको। दस हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ लेकर सिपाहियों की नंगी तलवारों के साये में वह आदमी अपने घर चला गया।

छः महीने बीते। वह आदमी अपने घर से बाहर निकला। उसके हाथ में बहुमूल्य पेटी थी और चेहरे पर विजयी मुस्कान। उसने सिपाहियों को आदेश दिया कि पेटी को राजमहल ले चलो। सारी प्रजा सड़कों पर निकल पड़ी। हर कोई दैवीय वस्त्रों की एक झलक पाने को बेकरार था। सम्राट ने दूर दूर से आमंत्रण दे कर राजाओं, मित्रों व संबंधियों को बुलाया था। राजमहल दुल्हन की भाँति सज रहा था। उस आदमी ने पेटी लाकर राज-दरबार में रखी व सम्राट को प्रणाम किया। पेटी देख कर सम्राट की शंका जाती रही।

वह आदमी राज-सिंहासन के पास पहुँचा और पेटी खोली। आदमी के कहने पर राजा ने अपना मुकुट उतार दिया। आदमी ने पेटी में हाथ डाला और खाली हाथ बाहर निकाल कर कहा महाराज यह लीजिए देवताओं का मुकुट। सम्राट ने हैरान हो कर कहा कि हाथ तो खाली हैं, पेटी में से तो तुमने कुछ निकाला ही नहीं। मुकुट कहाँ है? आदमी हँस पड़ा और बोला, हे सम्राट! स्वर्ग से चलते समय देवराज इन्द्र ने मुझे कहा था कि यह दिव्य वस्त्र केवल उसी को दिखाई देंगे जो अपने असली बाप की औलाद होगा। प्रत्येक आदमी को यह वस्त्र दिखाई नहीं देंगे। राजा को हाथ खाली दिखाई पड़ रहा

था परन्तु ऊपर से हर्षित होकर वह कह उठा कि वाह क्या सुंदर मुकुट है, ऐसा सुंदर मुकुट आज तक नहीं देखा और फिर वह मुकुट, जो था ही नहीं, उसे आदमी के हाथों से लेकर सम्राट ने पहन लिया। अब झूठ का आडंबर शुरु हो गया। सारा दरबार मुकुट की तारीफ कर रहा है। राजदरबारी, रानियाँ, मित्र, सखा, मंत्री सभी तारीफ कर रहे हैं कि महाराज ऐसी सुंदर वस्तु तो दस हज़ार स्वर्ण मुद्राओं में भी सस्ती है। कौन कहे कि मुकुट दिखाई नहीं दे रहा? जो भी कहेगा वह बाकी लोगों के परिहास का कारण बनेगा कि यह अपने असली बाप की औलाद नहीं है। सभी दिल खोल कर तारीफ कर रहे हैं।

राजा ने मुकुट पहन लिया, अंदर से तो उसे घबराहट हो रही थी परन्तु मजंबूरी थी, ऊपर से मुस्कुरा रहा था। अब उस आदमी ने सम्राट का कोट उतरवाया, धोती उतरवाई, एक-एक वस्त्र उतरवा लिया। यहाँ तक कि उसके शरीर पर केवल गुप्तांगों को ढ़कने वाला वस्त्र ही रह गया। सम्राट का दिल घबरा रहा था कि यदि यह वस्त्र भी उतारे गए तो नग्न हो जाऊँगा परन्तु कुछ कह नहीं सकता। अगर कहे तो दरबारी कहेंगे कि इतनी देर से आपको नज़र आ रहा था अब नज़र नहीं आ रहा इसलिए कि आप अपने असली बाप की औलाद नहीं हो। मजबूरी थी अंतिम वस्त्र भी उतार कर देना पड़ा। अब राजा भरे राज-दरबार में नग्न खड़ा है और राजदरबारी वाह! वाह! कर रहे हैं और तालियाँ बजा रहे हैं। सभी को नज़र आ रहा है कि राजा नग्न है परन्तु कहे कौन?

अब तो हद हो गई, उस आदमी ने कहा कि हमारे सम्राट के लिए यह दिव्य वस्त्र पहली बार धरती पर आए हैं इसलिए इन वस्त्रों की शोभा यात्रा निकलनी चाहिए ताकि सारी प्रजा देख पाए कि दिव्य

वस्त्रों में हमारे महाराज कितने सज रहे हैं। राजा के प्राण कांप गए कि चलो यहाँ तक तो सही था कि अपने राज-दरबार में नग्न हुआ पर आम प्रजा में और वह भी इस अवस्था में? परन्तु फिर वही मजबूरी, कहे कैसे? दरबारी भी हाँ में हाँ मिला रहे हैं कि महाराज दिव्य वस्त्रों की शोभा यात्रा जरुरी है, प्रजा को भी यह अधिकार है कि अपने राजा को दिव्य वस्त्रों में देखे। अब झूठ की यात्रा शुरू हो गई। राजधानी के रास्तों पर भीड़ उमड़ रही है। नग्न राजा रथ पर सवार है लाखों की भीड़ उनकी जय जयकार कर रही है क्योंकि सभी को उस कथन के बारे में पता है। छोटे-छोटे बच्चे अपने पिता के कंधों पर चढ़कर यह शोभा यात्रा देख रहे हैं। किसी बच्चे ने अपने बाप के कान में कहा कि पिता जी, वस्त्र कहाँ हैं? राजा तो नग्न दिखाई दे रहा है। पिता ने झिड़की दी कि चुप नादान! राजा नंगा नहीं है दिव्य वस्त्र पहने है। तुम्हे अनुभव नहीं है जब बड़े हो जाओगे तुम्हे भी यह वस्त्र दिखाई देने लगेंगे।

इसी प्रकार हम भी झूठे वस्त्रों की गवाही दे रहे हैं। किसी ने कहा कि ईश्वर वहाँ है तो कहा कि हाँ है। हम सभी इस असत्य की यात्रा के गवाह हैं। सत्य का गवाह हममें से कोई भी नहीं है क्योंकि जो सत्य का गवाह है वही ईश्वर का साक्षी है। सुबह से सांझ तक, जीवन से मृत्यु तक यही असत्य की गवाही चलती रहती है। इस अन्धी यात्रा में हम कभी जानने की कोशिश ही नहीं करते कि सत्य क्या है। वास्तव में असत्य के गवाहों में सत्य का पक्षधर होने का साहस हम सारा जीवन नहीं जुटा पाते।

दक्षिण भारत में एक महापुरुष हुए हैं महर्षि रमण। उनके पास एक जिज्ञासु आया और कहा कि महर्षि, मैं ईश्वर को जानना चाहता

हूँ मैं ऐसा क्या सीखूँ कि उसे पा सकूं। महर्षि ने कहा कि सीखो मत, जो कुछ भी सीखा है भूल जाओ, जो कुछ भी जानते हो भूल जाओ। जिज्ञासु चौंका कि हे महर्षि! भूल जाने से ईश्वर को कैसे पा सकूंगा? महर्षि ने कहा कि जो कुछ भी सीखा है वह भूल जाओगे तो तुम्हारा मन हल्का हो जाएगा। तुमने अपने मन के ऊपर ज्ञान के पत्थर रखे हुए हैं जब यह पत्थर हट जाएंगे तो तुम्हारा मन हल्का होकर ऊपर की ओर गमन करेगा। ठीक जैसे शीशे के ऊपर धूल जम जाये तो उसमें चेहरा नज़र नहीं आता। ऐसे ही मन पर भी ज्ञान की धूल जम गई है जिस दिन यह हट गई उसी दिन ईश्वर की छवि इसमें साफ नज़र आने लगेगी। सन्त जॉन कहते हैं:-

"Truly, truly I say to you unless one is born a new, one cannot see the kingdom of God."

(John 3:3)

हमारी मुश्किल यह है कि हम स्वयं परिश्रम करने के स्थान पर दूसरों द्वारा अर्जित किया हुआ ज्ञान एकत्र करके कर्त्तव्य मुक्त होना चाहते हैं। ईश्वरीय सत्ता में प्रवेश तभी मिल सकता है जब हम सारा उधार का ज्ञान विसर्जित करके स्वयं अपना ज्ञान एकत्र करने की राह में परिश्रम करें। कहना आवश्यक नहीं है कि अपने ज्ञान से बढ़कर नयापन हमारे लिए और क्या हो सकता है?

ऐसे ही एक युवा सन्यासी एक आश्रम में आकर ठहरा। उस आश्रम का जो बूढ़ा गुरु था वह रोज़ एक जैसी ही बातें करता, थोड़ी सी बातें करके चुप हो जाता। थोड़े दिनों में युवा सन्यासी ऊब गया। उसके मन में एक विचार आया कि इस बूढ़े गुरु को कुछ भी नहीं आता इसलिए यह मेरे योग्य नहीं है। जो थोड़ा बहुत जानता है वही

रोज दोहरा देता है। कल सुबह होते ही मैं इस आश्रम को छोड़ दूंगा और किसी योग्य गुरु की तलाश करूँगा।

उसी रात एक ऐसी घटना घटी जिसने उस युवा सन्यासी को सारी उम्र के लिए उस आश्रम के साथ बांध दिया। उस रात एक अन्य सन्यासी उस आश्रम में आकर रुका। बूढ़े गुरु ने उसे कुछ बोलने को कहा। वह सन्यासी जब बोलना शुरु हुआ तो हर कोई उसको मन्त्रमुग्ध होकर सुनता रहा, दो घण्टे कैसे बीत गए पता ही न चला। हर विषय पर उस सन्यासी की पकड़ बहुत मजबूत थी। युवा सन्यासी के मन में आया कि वाह! गुरु हो तो ऐसा। इसके पास ज्ञान बहुत है इसे ही गुरु बनाना चाहिए, यही मेरा गुरु बनने लायक है। सत्संग समाप्त हुआ और वह सन्यासी बूढ़े गुरू के पास पहुँचा जोकि एक कोने में बैठा चुपचाप सब सुन रहा था और पूछा कि गुरु जी, आपको मेरी बातें कैसी लगी?

इस पर वह बूढ़ा खिलखिलाकर हँसा और बोला कि माफ करना, पिछले दो घण्टों से मैं तुम्हें ही सुनने की कोशिश कर रहा हूँ पर तुम बोलते ही नहीं। तुम्हारे अंदर से गीता, शास्त्र, उपनिषद बोलते हैं परन्तु तुम नहीं बोलते। अब तक जो कुछ भी तुम बोले हो वह सब कुछ सीखा हुआ था या याद किया हुआ था। ऐसा एक शब्द भी तुमने नहीं कहा जिसे तुमने जाना हो इसीलिए तुम कुछ भी नहीं बोलते बल्कि तुम्हारे अन्दर से किताबें बोल रही हैं।

हम सब भी ऐसा ही उधार का ज्ञान लेकर जीते हैं और ज्ञानी होने का भ्रम पाले रहते हैं। जीवन के सत्य को इस ज्ञान से नहीं जाना जा सकता। सत्य को वही जान पाता है जो उधार के ज्ञान से मुक्त होता है। हम लोग ईश्वर के बारे में, ईश्वरीय राह के बारे में

कितना जानते हैं यह हम सभी जानते हैं। हम ऐसा ही उधार का ज्ञान इकट्ठा करके जीते हैं और एक दिन नष्ट हो जाते हैं। आदमी अज्ञान में पैदा होता है और मिथ्या ज्ञान में मर जाता है ज्ञान उपलब्ध ही नहीं हो पाता। हम एक-एक दिन करके मौत की ओर जाते लोग जानते भी नहीं कि जीवन वास्तव में कहते किसे हैं? क्योंकि जब तक सत्य न मिल जाए तब तक जीवन जींवन नहीं है। जिसे सत्य नहीं मिलता वह मृत्यु में ही जीता है और मृत्यु में ही नष्ट हो जाता है। सत्य के इलावा कोई और जीवन हो ही नहीं सकता। पंचम पातशाह साहिब श्री गुरु अर्जन देव जी महाराज समझाते हैं:-

"सभ किछु घर महि बाहरि नाही।।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाई।।
गुरपरसादी जिनी अंतरि पाइआ
सो अंतरि बाहरि सुहेला जीओ।।"

(आदि ग्रन्थ, अंग-१०२)

कि ईश्वर का निवास इस शरीर रुपी घर में ही है कहीं बाहर नहीं। जो उसे बाहर ढूँढ़ता है वह भ्रमित है। गुरु की कृपा से जब अंतर में बैठा वह ईश्वर मिल जाता है तो जीव अंतर से और बाहर से सुखी हो जाता है। बिना उसे जाने सुख मिलना सम्भव नहीं है।

परन्तु मन के वश प्राणी सारा जीवन दौड़ता ही रहता है। अब जो चीज हमसे दूर हो उसके लिए दौड़ना समझ में आता है परन्तु जो हमारे भीतर ही हो उसके लिए दौड़ना असम्भव है। उसके लिए दौड़े तो भटक जाएंगे। कुछ चीजें ऐसी हैं जो दौड़ कर पाई जा सकती हैं क्योंकि वे हमसे अलग हैं। धन पाना हो तो दौड़ना ही पड़ेगा, यश मान पाना हो तो दौड़ना ही पड़ेगा। धन कहीं और है और आप कहीं

और, दौड़ना ही पड़ेगा। परन्तु ईश्वर तो कहीं दूर नहीं है। एक इंच का भी फासला नहीं है। एक इंच का भी फासला होता तो शायद दौड़ लेते। जब वह वहीं है जहाँ हम हैं तो कहाँ दौड़ोगे? कहाँ खोज़ोगे? जिसे खोया हो उसे खोज सकते हैं। जिसे खोया ही नहीं उसे कैसे खोजोगे? हुजूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी अपने सत्संगों में प्राय: कहा करते हैं कि जो वस्तु जहाँ खोई है उसे वहीं खोजा जा सकता है। वस्तु तो खोई है इस शरीर रुपी कमरे में और खोज रहे हैं मन्दिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरिजाघरों में, तीर्थ स्थानों पर। जो चीज जहाँ खोई हो उसे वहीं खोजा जा सकता है, अन्य स्थान पर खोजा तो मुश्किल हो जाएगी, हम भटक जाएंगे।

एक आदमी शराब पी कर धुत्त हो गया और रात को अपने घर आ गया। नशे में था तो घर को पहचान न पाया। घर के पास खड़ा होकर राह चलते लोगों से, पड़ोसियों से अपने घर का रास्ता पूछने लगा कि मुझ पर कृपा करो, मैं अपना घर भूल गया हूँ, मुझे बता दो कि मेरा घर कहाँ है? लोगों ने कहा कि तुम अपने घर के सामनें ही तो खड़े हो तो वह बोला कि मुझे भ्रमित मत करो मेरी पत्नी व मेरे बच्चे मेरी राह देख रहे होंगे। मेरा घर कहाँ है यह बता दो। शोर गुल सुनकर उसकी पत्नी जाग गई और घर से बाहर आ गई। बाहर आकर देखती है कि उसका पति रो रहा है, चिल्ला रहा हैं कि कोई मुझे मेरे घर पहुँचा दो। उसने अपने पति से कहा कि प्राणनाथ यही तो आपका घर है, मैं आपकी धर्म पत्नी हूँ, चलिए अपने घर के अन्दर चलिए। उसने झटके से हाथ छुड़ा लिया और कहा कि नहीं तुम मेरी पत्नी की तरह लगती जरुर हो लेकिन मेरी पत्नी नहीं हो। मेरी पत्नी, मेरे बच्चे मेरा रास्ता देख रहे होंगे। सभी लोग मेरी खिल्ली

उड़ा रहे हैं कोई मुझे नहीं बता रहा कि मेरा घर कौन सा है। तभी उसके दूसरे शराबी साथी ने कहा कि ठहर, मैं अभी रिक्शा लेकर आता हूँ और तुम्हे तुम्हारे घर तक छोड़ आता हूँ। लोग जो यह सब तमाशा देख रहे थे वे चिल्लाने लगे कि अरे पागल, रिक्शा में मत बैठ जाना, नहीं तो घर से दूर निकल जाएगा क्योंकि तूँ घर पर ही तो खड़ा है। इसी प्रकार तुम्हें कहीं भी जाने की जरुरत नहीं है। यदि जरुरत है तो केवल जागने की, तुम्हें केवल होश में आना है। जैसे ही तुम्हें होश आएगा तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम अपने घर में ही खड़े हो। रिक्शा में बैठने की जरूरत नहीं है क्योंकि रिक्शा में बैठकर जितनी अधिक खोज करोगे उतना ही अपने घर से, अपनी पत्नी से, अपने बच्चों से दूर जाते जाओगे इसलिए कहीं जाने की जरुरत नहीं है केवल होश में आने की जरुरत है।

ठीक इसी प्रकार हम सब वहीं खड़े हैं जहाँ से हमें कहीं जाना नहीं है। परन्तु हमारा मन केवल दौड़ने की या भागने की भाषा समझता है और जो पहुँचा हुआ हूँ, पा चुका हूँ, की भाषा समझने लगता है वास्तव में वह सन्यासी है। यदि सन्यासी भी दौड़ने की, खोजने की बात कर रहा हो तो वह अभी भी गृहस्थी ही है चाहे वेश भूषा उसने सन्यासी की पहन ली हो परन्तु चित्त से वह अभी भी गृहस्थ ही है। सन्यासी होने का अर्थ है कि पाने को कुछ है ही नहीं। यह पाने की, खोजने की दौड़ तो ऐसे ही है जैसे कोई भिखारी हीरे जवाहरात के भरे बक्से पर बैठकर भीख माँग रहा हो।

भगवान ने सारी दुनिया बनाई और जब आदमी को बनाया तो बहुत परेशान हुआ। आदमी को ईश्वर ने जैसे ही बनाया आदमी ढ़ेर सारी शिकायतें, ढ़ेर से सवाल और ढ़ेर सारी समस्याएँ लेकर ईश्वर

के पास पहुँचने लगा। ईश्वर ने सभी देवताओं को बुलाया कि मैं आदमी को बनाकर बहुत परेशान हूँ। मुझे ये चैन से बैठने नहीं देता है और न कोई काम करने देता है। कोई ऐसी तरकीब बताओ कि मैं इससे बच सकूँ। किसी ने कहा कि आप हिमालय पर जाकर बैठ जाएँ। ईश्वर ने कहा कि कितनी देर तक बचूँगा हिमालय पर, आज नहीं तो कल कोई न कोई वहाँ पहुँच ही जाएगा। किसी ने कहा कि चाँद पर चले जाओ। ईश्वर ने कहा कि जिस तरह आदमी उन्नति कर रहा है चाँद पर कभी तो पहुँच ही जाएगा, कोई ऐसी जगह बताओ जहाँ आदमी पहुँच ही न पाए। एक देवता ने कहा कि प्रभु एक स्थान है जहाँ आदमी आप तक नहीं पहुँच सकता। आप आदमी के अन्दर बैठ जाइए। आदमी सारी सृष्टि छान सकता है, चाँद तारों तक पहुँच सकता है परन्तु अपने अन्दर झाँककर कभी नहीं देख पाएगा। इस प्रकार ईश्वर आदमी के अंतर में छिपकर बैठ गया है और आदमी ईश्वर की तलाश में सारी सृष्टि छान रहा है परन्तु एक क्षण ठहर कर अपने अंतर में झाँकने की कोशिश नहीं कर रहा जहाँ ईश्वर विराजमान है।

यदि हम ईश्वर को पाने की बजाय यह समझ लें कि हमने उसे कैसे खोया है, किस कारण हम उससे दूर हैं, किन कारणों से हमने ऐसी दीवारें खड़ी कर दी हैं कि एक ही घर में रहते हुए हम ईश्वर से मिल नहीं पा रहे तो बात बन जाएगी। परमात्मा को खो देने का अर्थ है स्वयं को खो देना। हमने अपने आपको कैसे खो दिया? हम अपने आपको कैसे भूल गए? हम तो अपने को ही पहचान नहीं पा रहे हैं कि हम कौन हैं? इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या हो सकती है? हम जानते हैं कि हम हैं परन्तु हम कौन हैं? कहाँ से आए हैं? कहाँ जाना

है? यह हमें मालूम नहीं। जिस दिन यह बातें समझ में आ जाएंगी हमें स्वयं का स्रोत अर्थात् ईश्वर याद आ जाएगा, फिर कोई दु:ख हमें दु:खी न कर पाएगा परन्तु यही सबसे मुश्किल कार्य भी है। जैसे दास ने पहले कहा था कि ईश्वर को पाना, ईश्वर को जानना तो क्षण भर में हो सकता है पर इस क्षण को लाने में हमें कितना समय लगेगा वह पता नहीं है। जो हमने सीखा, जैसा सीखा उसी को सत्य माना और नष्ट हो गए। हमने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि जो हमने सीखा है क्या वह सत्य है भी या नहीं।

किसी गाँव में एक महापुरुष आकर ठहरा तो गाँव वालों ने सोचा कि हमारे गाँव में एक महापुरुष आया है चलकर उसे गाँव के मन्दिर में आने का न्यौता देते हैं और ज्ञान की बातें सुनते हैं। गाँव के चंद लोग महापुरुष के पास गए और गाँव के मन्दिर में प्रवचन करने का न्यौता दिया परन्तु महापुरुष ने यह कह कर इंकार कर दिया कि मुझे तो कुछ भी ज्ञान नहीं जो आप लोगों में बाँट सकूँ इसलिए मुझे तो आप माफ ही कर दो। गाँव के लोग न माने और रोज टोली बनाकर आते और मन्दिर में चलकर प्रवचन करने का न्यौता देते। महापुरुष एक दिन बहुत अधिक तंग हो गए और हाँ कर दी कि आप लोग कल प्रात: मन्दिर में इकट्ठे हो जाना मैं आऊँगा। अगली सुबह महापुरुष मन्दिर में पहुँचे तो देखा कि सारा गाँव मन्दिर के प्रांगण में इकट्ठा था। महापुरुष ने एक नज़र उन पर डाली और पूछा कि इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ, मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप लोग जानते हैं कि ईश्वर है? गाँव के सभी लोगों ने एक ही स्वर में कहा कि हाँ हम जानते हैं कि ईश्वर है। महापुरुष ने कहा कि जब आप जानते हैं कि ईश्वर है तो इससे आगे और क्या ज्ञान मैं आपको दे सकता हूँ, जो

संसार की अन्तिम सच्चाई है, अन्तिम ज्ञान है उससे आप अवगत हैं, इससे आगे कुछ भी नहीं है कहने सुनने को। इतना कह कर वह महापुरुष वहाँ से चला गया। अब मन्दिर में बैठे लोग परेशान हो उठे क्योंकि कोई नहीं जानता था कि ईश्वर है, एक दूसरे की देखादेखी हाथ उठा दिए थे, हाथ उठाते वक्त ख्याल भी न आया था कि बिना सोचे समझे ही हाथ उठा रहे हैं। आपस में फिर सलाह की कि महापुरुष के विचार सुनने तो जरुर हैं परन्तु इस बार अनजाने में गलती हो गई।

अगले दिन वे फिर से महापुरुष के पास जा पहुँचे और जाकर मन्दिर में आने की विनती की। महापुरुष ने कहा कि भाई मुझे तंग मत करो। जब आप सब ईश्वर के बारे में जानते ही हैं तो मुझसे तुम्हें क्या मिल जाएगा? इस पर उन लोगों ने सोचा उत्तर दिया कि जो पहले आपके पास आये थे वे दूसरे लोग थें, हम वह नहीं हैं, कृप्या हमारा निवेदन स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें। महापुरुष जानते थे कि यह लोग वही हैं जो कल आये थे परन्तु जानबूझ कर झूठ बोल रहे हैं। बहुत मिन्नत के बाद महापुरुष फिर से मन्दिर में पहुँचे और मंच पर जाकर खड़े हो गये। थोड़ी देर लोगों को देखने के बाद उन्होंने फिर से वही प्रश्न दोहराया कि क्या आप लोग जानते हैं कि ईश्वर है? अब सभी लोगों ने एक आवाज़ में पहले से सोचा हुआ उत्तर दिया कि कैसा ईश्वर, हम किसी ईश्वर को नहीं जानते। हमें ईश्वर के बारे में कुछ भी नहीं पता हमें आप ही बताइए। महापुरुष मुस्कुराए और कहा कि जब आप ईश्वर के सम्बन्ध मे कुछ जानते ही नहीं, उसे मानते ही नहीं तो किसलिए ईश्वर की बात करूँ और जब बात करनी ही नहीं है तो मेरा यहाँ क्या काम? इतना कह वह फिर से मन्दिर से बाहर

निकल गए। अब तो गाँव के लोगों में सनसनी फैल गई कि कैसा आदमी है? जब हाँ में उत्तर दिया था तो यह कह कर टाल दिया कि जानते हो तो और कुछ जानने की आवश्यकता क्या है? और आज जब मना किया तो यह कह कर चल दिया कि जिसे जानते ही नहीं, मानते ही नहीं उसके बारे में बात करने या सुनने से क्या लाभ? अब फिर से गाँव के लोगों ने आपस में सलाह की कि इस महापुरुष के प्रवचन सुनने तो जरुर हैं इस बार इस प्रश्न का कोई ऐसा उत्तर खोजो कि उसे बोलना ही पड़े।

अगले दिन वे फिर से महापुरुष को किसी तरह मनाकर तीसरी बार मन्दिर में ले आए। महापुरुष ने फिर से वही रटी रटाई बात दोहराई। इस बार गाँव वालों ने तीसरा विकल्प सोच रखा था। आधे लोग कहने लगे कि हम ईश्वर को जानते हैं, मानते हैं और आधे कहने लगे कि हम न ईश्वर को जानते हैं न मानते हैं। इस पर महापुरुष ने उत्तर दिया कि जो लोग ईश्वर के बारे में जानते हैं वह कृपा करके उन लोगों को समझा दें जो नहीं जांनते। इतना कहकर महापुरुष वापस अपने स्थान की ओर चल दिए और साथ ही यह भी कहा कि अब अगर हिम्मत है तो चौथी बार बुलाकर दिखाना। गाँव वाले तो जैसे मुश्किल में पड़ गये। बहुत सोचा परन्तु चौथा कोई उत्तर न मिल पाया। कुछ समय बाद महापुरुष दूसरे गाँव में जा टिके। वहाँ भी पड़ोसी गाँव की बात जा पहुँची थी। एक जिज्ञासु ने पूछ ही लिया कि महाराज जी, यदि वे आ जाते चौथी बार तो आप क्या करते? क्या कोई चौथा उत्तर था? महापुरुष ने कहा कि हाँ चौथा विकल्प भी था। वह था कि प्रश्न सुनकर वे लोग चुप रह जाते। ऐसी स्थिति में मुझे उन्हे समझाना ही पड़ता यदि चौथी बार वे आ जाते तो

अंततः मुझे ईश्वर के बारे में उन्हें ज्ञान देना ही पड़ता। यदि वह चुप रह जाते तो उस समय वे वाकई ईमानदार होते कि हम तो इतना भी नहीं जानते कि ईश्वर है या नहीं तो मुझे बोलना पड़ता। परन्तु जब वे इतना भी नहीं जानते कि वाकई ईश्वर है या नहीं और फिर भी वे कोई उत्तर दे रहे हैं तो इस सूरत में कोई भी उत्तर स्वयं से ही बेईमानी है।

हम स्वयं भी अपने अंतर में झाँक कर देख लें कि हमें भी ईश्वर के बारे में कुछ पता है या नहीं। जिस दिन इस सच्चाई पर हम खड़े हो जाएंगें उसी दिन से हमारी सच्ची आस्तिकता की यात्रा शुरू हो जायेगी। ईश्वरीय मार्ग पर वह हमारा पहला कदम होगा। आश्चर्य की बात है कि सत्य के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं है। कभी हम तटस्थ होकर कुछ देर एकांत में बैठें और सोचें कि ईश्वर के सम्बन्ध में, धर्म के सम्बन्ध में हमें कितना मालूम है? हमें गीता कंठस्थ हो सकती है, शास्त्रों के श्लोक कंठस्थ हो सकते हैं, परन्तु यह ध्यान रखें कि यह ज्ञान भगवान कृष्ण का है, ऋषियों का है हमारा नहीं। उसे याद करके, पढ़ कर हम अपना ज्ञान नहीं बना सकते। सच तो यह है कि दुनिया भर का ज्ञान इकट्ठा करके भी हम अपना अज्ञान नहीं मिटा सकते। उधार का ज्ञान कभी कभी बहुत ही खतरनाक हो सकता है।

एक अन्धा आदमी अपने मित्र के घर मेहमान हुआ। उसके मित्र ने रात के खाने के लिए बहुत कुछ बनवाया। भोजन के अन्त में खीर भी बनवाई। खीर खा कर अन्धे ने पूछा कि मित्र यह क्या पदार्थ है? मुझे यह बहुत अच्छा लगा है। दोस्त ने कहा कि मित्र यह खीर है। अन्धे ने पूछा कि भाई खीर क्या होती है? किससे बनती है मुझे

समझाओ। मित्र ने कहा कि खीर दूध से बनती है। अन्धे ने पूछा कि यह दूध क्या होता है? कैसा होता है मुझे नहीं पता ज़रा विस्तार से समझाओ। अब मित्र उसको समझा रहा है कि दूध सफेद रंग का होता है। अंधे ने कहा कि मेरा प्रश्न वहीं का वहीं हैं? अब यह बताओ कि सफेद कैसा होता है? मित्र बहुत समझदार था उसने कहा कि सफेद रंग बगुले का होता है जो नदी में होता है और मछली खाता है। अन्धे ने फिर कहा कि मित्र मैं अभी भी नहीं समझा यह बगुला कैसा होता है? मुझे इस तरह समझाओ कि मैं समझ पाऊं।

मित्र ने हाथ से बगुले की आकृति बनाई और अपना हाथ अन्धे के हाथ में दे दिया और कहा मित्र मेरे हाथ पर हाथ फिराओ तो तुम्हें पता चल जाएगा कि बगुला कैसा होता है। अब अंधा तो स्पर्श की भाषा जानता है उसे हाथ के स्पर्श से एक आकृति का आभास हुआ। मित्र ने कहा कि जैसे मेरा हाथ सुडौल और मुड़ा हुआ है ऐसे ही बगुले की गर्दन भी सुडौल और मुड़ी हुई होती है। अब अन्धा खुशी से नाचने लगा कि मैं समझ गया कि दूध सुडौल हाथ की तरह होता है और मुड़ा हुआ होता है मैं अच्छी तरह समझ गया। मित्र ने अपने सिर पर हाथ दे मारा और कहा कि नहीं मित्र, दूध हाथ की तरह सुडौल नहीं होता है। इस पर अन्धे आदमी ने कहा कि अब तुम मुझे दुविधा में डाल रहे हो, अभी अभी तो तुमने मुझे समझाया है कि दूध कैसा होता है और अब अपनी ही बात से मुकर रहे हो।

वास्तव में सच यही है कि अन्धे को सफेद रंग का अहसास नहीं करवाया जा सकता। यदि अन्धे की आँखें ठीक हो जाएँ तो ही वह सफेद का अर्थ समझ सकता है अन्यथा कोई रास्ता नहीं। वैसे ही जहाँ तक सत्य का सम्बन्ध है हमने भी किताबें पढ़ पढ़कर उस अंधे

आदमी की तरह हाथ को छूकर, अन्धे आदमी की धारणा की तरह धारणा बना ली है। इस धारणा को यदि हम सारी जिंदगी पकड़कर बैठे भी रहें तो भी कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि सत्य की ओर से हम नितांत अन्धे हैं। कहते हैं कि बार बार दोहराया जाये तो असत्य भी सत्य की तरह ही मालूम होता है। धर्म ग्रन्थों का पठन बार बार करने से कहीं ज्ञान तो नहीं उपज़ता। रटने से ज्ञान पैदा नहीं हो सकता यह बात तो सत्य है।

गुरु साहिब ने शुरु में जो समझाया है उसके बारे में जानने के लिए सबसे पहले तो जरुरी यह है कि हम यह अच्छी तरह जान लें कि हम अज्ञानी हैं सत्य के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं है। दूसरी बात यह कि उधार के ज्ञान से हमारा कुछ भी भला नहीं होने वाला। यदि मृत्यु को जानना है तो स्वयं मरना पड़ता है। मृत्यु क्या है यह बताने के लिए कोई भी आज तक लौटा नहीं। यदि ज्ञान अर्जित करना है तो उस मार्ग पर स्वयं चलना पड़ेगा जिस पर चलकर ज्ञान उपलब्ध होता है और कोई रास्ता नहीं है ज्ञान अर्जित करने का। और वह मार्ग वास्तव में है क्या? वह मार्ग है समस्त विचारों से मुक्ति, पूर्ण मौन व पूर्ण शून्यता में उतर जाना। यदि यह स्थिति एक क्षण को भी हम ला पाएँ तो जान पाएँगे उसे जो हमारे अंतर में बैठा है और जन्मों से हमारा इंतजार कर रहा है। जब तक हमारा मन शब्दों से भरा है, विचारों में लीन है तब तक बेचैन है। ठीक उसी तरह जैसे झील के पानी में तरंगें हैं। चाँद का प्रतिबिंब तरंगों वाली झील में नहीं बन पाता। जैसे ही झील में तरंगें शान्त हो जाती हैं तो झील एक दर्पण बन जाती है और चाँद उसमें चमकने लगता है। मौन की इस स्थिति में हम दर्पण बन जाते हैं और ईश्वर उस दर्पण में साफ नज़र आ जाता

है। जिसे हम जन्मों से भटक भटक कर खोज रहे थे अचानक वह हमें अपने अंतर में दिखाई देने लगता है। अब प्रश्न यह है क़ि क्या यह मन ऐसा दर्पण बन सकता है? तो उत्तर यह है कि बन सकता है और ऐसे दर्पण बने मन का ही नाम ध्यान है, समाधि है, महासुन्न अवस्था है। ऐसी अवस्था जहाँ सारी चंचलता, ईर्ष्या, द्वेष, अज्ञान विदा हो जाते हैं और रह जाती है एक अडोल ज्योति जो जरा भी नहीं हिलती। यही वह अडोल चेतना है जिससे प्रभु को जाना जा सकता है, पहचाना जा सकता है।

रे मन ऐसो करि संनिआसा

आखिर मनुष्य के मन के साथ ऐसी कौन सी उलझन है, कौन सी ऐसी पहेली है जो कभी सुलझ नहीं पाती? इस पहेली को सुलझाए बिना जो व्यक्ति जीवन की भाग दौड़ में उलझा रहता है, वह बिल्कुल नासमझ है, पागल है। जिसने अपने मन की समस्या को, उलझन को, रहस्य को ठीक तरह से नहीं समझा उसके द्वारा जीवन में की गई सारी भाग दौड़ व्यर्थ है, बेकार है। यह तो ठीक उसी तरह है जैसे कोई आदमी समस्या को समझे बिना ही उसका समाधान करने निकल पड़ा हो। भला समस्या को समझे बिना उसका हल कैसे निकल सकता है? इस संदर्भ में एक कथानक पेश है:-

एक गणित के अध्यापक थे। प्रत्येक साल अपनी कक्षा में आने वाले नये विद्यार्थियों का स्वागत करने का उनका ढ़ंग अनोखा था। वह श्यामपट पर दो अंक लिख देते तीन व पाँच और विद्यार्थियों से पूछते कि इसका हल क्या है? कोई बोलता आठ तो वह सिर इंकार में हिला देते। दूसरा बोलता दो, वह फिर से इंकार कर देते। तीसरा बोलता पन्द्रह लेकिन वह फिर से इंकार कर देते। अब सभी चुप कर जाते कि और क्या उत्तर हो सकता है? अन्त में अध्यापक ने कक्षा को सम्बोधन करना शुरु किया और कहा कि प्रिय विद्यार्थियो! आप सब ने एक बहुत बड़ी भूल कर दी वह यह कि मुझसे किसी ने यह नहीं पूछा कि आखिर प्रश्न क्या है? बस उत्तर देना शुरु कर दिया। मैंने लिखा तीन और पाँच लेकिन प्रश्न नहीं लिखा। जब तक आप प्रश्न ही नहीं समझते तो उत्तर देने का क्या लाभ? जब तक प्रश्न का पता न हो तब तक तमाम उत्तर बेमानी हैं, निरर्थक हैं। यह भूल गणित में ही

नहीं, ज़न साधारण यही भूल जीवन में हर बार करता है। जीवन के प्रश्न को, जीवन की समस्या को समझे बिना ही हम अपने अपने ज्ञान के आधार पर उत्तर देना शुरू कर देते हैं।

मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है उसका मन और मन की सबसे बड़ी समस्या है उसका खालीपन, उसकी रिक्तता। जितना भी भरो यह भर नहीं पाता। आखिर इसके पीछे कौन सा रहस्य है, कौन सा प्रश्न है जिसे हम जीवन भर समझ नहीं पाते और सारी उम्र रोते ही रहते हैं, दु:खी ही रहते हैं। इस समस्या के हल के बिना, इस प्रश्न का उत्तर जाने बिना हम चाहे मन्दिरों में पूजा पाठ करें, चाहे नमाज पढ़ें, चाहे तीर्थ यात्राएँ करें, चाहे हाथ फैलाकर आकाश की ओर देखकर कितनी भी फरियाद करें उससे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि जो अपने मन की गुत्थी सुलझाने में सफल नहीं हो पाता उसकी प्रार्थना का कोई अर्थ नहीं कोई मूल्य नहीं। जो मनुष्य अपने जीवन की समस्या के प्रति स्पष्ट ही नहीं है वह मन्दिर भी जाएगा तो वहाँ भी उसे शान्ति नहीं मिलेगी। हाँ यह तय है कि वह जहाँ भी जाएगा अपने अन्दर के द्वंद्व को, उपद्रव को वहाँ जरुर साथ ले जाएगा और वहाँ के वातावरण को भी खराब ही करेगा। अंतर से जो उलझा हुआ है वह जीवन में जो भी करेगा उलझे हुए दिमाग से ही करेगा और बजाय कि उसे सुलझन मिले वह और उलझेगा, और परेशान होगा और दुखी होगा।

इसलिए सबसे जरुरी और बुनियादी प्रश्न यह है कि असल में मन की समस्या क्या है? सबसे पहली बात यह है कि हमारे अन्दर की जो महत्वाकांक्षा है, दौड़ है कुछ पाने की, कुछ हासिल करने की, कुछ बन जाने की, किसी मुकाम तक पहुँचने की, यह केवल इसलिए

है कि हमें अन्दर ही अन्दर एक खालीपन का, रिक्तता का आभास होता है कि हम अन्दर से बिल्कुल खाली हैं। ऊपर से चाहे हम कितना भी दिखाएं कि हम समर्थ हैं, हमें कोई चिंता नहीं है परन्तु हरेक व्यक्ति यह जानता है कि वह अन्दर से खाली है, उसके अन्दर एक शून्य है और इसी शून्य को भरने के लिए हम दौड़ते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं। परन्तु मुश्किल यह है कि यह शून्य, यह खालीपन कभी भरता नहीं क्योंकि शून्य तो भीतर है, खालीपन तो अन्दर है और दौड़ है बाहर। बाहर की जितनी चाहे सामग्री हम इकट्ठी कर लें, अन्दर की रिक्तता भर नहीं पाती। बाहर आपका साम्राज्य बढ़ता जाएगा और अन्दर का यह खालीपन यूँ ही बना रहेगा। यही कारण है कि धनी से, धनी व्यक्ति से भी पूछो तो उसे और अधिक चाहिए, वह दौड़ता ही दिखाई देगा, उसे न दिन में चैन है न रात में। सामग्री तो है बाहर और शून्य है अन्दर इसीलिए सिकंदर खाली हाथ गया। यही दिखाने की उसने कोशिश की कि इतना धन माल, साम्राज्य होते हुए भी वह खाली ही गया। सिकंदर के जनाजे में उसके खाली हाथ बाहर होना यही बताता है कि बाहर की किसी भी सामग्री से अंदर का खालीपन भरा नहीं जा सकता। बाहर की कोई भी चीज अन्दर नहीं पहुँच सकती। बाहर की सम्पदा तो बाहर की ही है, बाहर के रिश्ते नाते बाहर के ही हैं। भीतर केवल मैं हूँ और मेरा खालीपन है। भीतर तो है रिक्तता और बाहर हम दौड़ रहे हैं कि भर लें, और भर लें। जब समय निकल जाता है तो हम नजर उठाकर देखते हैं तो पता चलता है कि अंतर तो अभी भी खाली ही है। तब अहसास होता है कि सारी मेहनत बेकार गई, सारी दौड़ बेकार गई। यह परिश्रम, यह दौड़ व्यर्थ इसलिए हो गई क्योंकि जिस दिशा में खालीपन था उससे

उल्टी दिशा में हमने परिश्रम किया उससे उल्टी दिशा में हमने दौड़ लगाई। जहाँ गड्ढा था वहाँ ढ़ेर नहीं लगाया अपितु ढ़ेर कहीं और ही लगाते रहे। ढ़ेर बढ़ता गया, बढ़ता गया और सहसा देखा कि गड्ढा तो अपनी जगह पर कायम है। गड्ढा है भीतर और ढ़ेर है बाहर। बाहर आपके पास एक मकान हो सकता है, दो मकान हो सकते हैं और किसी दूसरे के पास एक भी नहीं परन्तु अंतर से दोनों ही खाली हैं। अंतर के भराव के लिहाज से भिखारी तो भिखारी है ही, धनी व्यक्ति भी भिखारी ही है। बाहर से चाहे हम कितने भी दानी पुरुष क्यों न हों, सेठ क्यों न हो पर अन्तर से भीखमंगे हैं।

एक फकीर जिस गाँव में रहता था उस गाँव में बच्चों के लिए पाठशाला न थी। गाँव में पाठशाला बनवाने के लिए सहायता की अर्जी लेकर वह अकबर के पास चला गया। जिस समय वह अकबर के पास पहुँचा उस समय अकबर नमाज अदा कर रहा था। फकीर वहीं ठहर गया। अकबर ने नमाज अदा करने के बाद दोनों हाथ उठाकर दुआ माँगी कि हे खुदा, मेरा साम्राज्य और बड़ा कर, मेरा खजाना और भर। यह सुनकर फकीर उल्टे पाँव वापस हो लिया। अकबर ने जब फकीर को जाते देखा तो उसे रोका और आने का कारण पूछा। फकीर ने कहा कि मैं आपके पास आया था अपने गाँव में पाठशाला खुलवाने के लिए धन की अर्जी लेकर लेकिन गलती से आपकी नमाज के आखरी हिस्से को सुन बैठा। मैंने सुना कि आप खुदा से धन माँग रहे हो, साम्राज्य माँग रहे हो। यह सुनकर मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया है कि जो अभी स्वयं ही माँग रहा है उससे माँगना ठीक नहीं। सोचा कि जब आपका माँगना खत्म हो जाएगा तभी आपसे माँगूंगा। फिर विचार आया कि जिससे आप जैसा

सम्राट माँग रहा है क्यों न मैं उससे ही माँगू जो सम्राटों का सम्राट है, क्यों व्यर्थ में आपको बीच में डालूं?

सोचने की बात यह है कि क्या हमारा माँगना कभी बंद होता है? मरते समय तक हम माँगते ही रहते हैं। यह इसलिए है कि हमारे भीतर का खालीपन भरता नहीं है। अन्त समय तक हम यही उम्मीद लगाए रहते हैं कि शायद कुछ मिल जाए, शायद हम भर जाएँ परन्तु बदकिस्मती से ऐसा कुछ भी नहीं हो पाता। आते भी हम खाली हैं और खाली ही चले जाते हैं।

मनुष्य अपने जीवन में उसी दिन किसी मुकाम पर पहुँचने में सफल होता है जिस दिन उसका माँगना समाप्त हो जाता है। जिस दिन उसकी कोई माँग नहीं रह जाती। जिस दिन उसके अन्दर का भिखारी मर जाता है। प्रत्येक धर्म मनुष्य को उस स्थान पर ले जाना चाहता है जहाँ वह सम्राट हो जाए। इस जगत में सांसारिक सम्राट तो बहुत हुए हैं लेकिन अध्यात्म के हिसाब से सम्राट बहुत ही कम हुए हैं सभी भिखारी ही होते हैं। कोई रोटी माँगता है तो कोई राजपाट माँगता है। किसी का कटोरा छोटा है किसी का बड़ा पर हैं सभी भिखारी ही। माँगने का तरीका भिन्न हो सकता है पर नीयत वही एक सी ही है। धर्म के अनुसार सम्राट वह है जो अपने अंतर के शून्य को भर पाता है, आन्तरिक तौर पर परिपूर्ण होता है। जो अपने अंतर को भर पाने में सफल हो जाता है उसकी बाहरी दौड़ बंद हो जाती है, उसकी सारी माँगें समाप्त हो जाती हैं, उसका कटोरा छूट जाता है, टूट जाता है। वास्तव में वही सम्राट कहलाने के योग्य है।

हम इतने आलसी हैं कि अनंत जीवन की खोज की कभी कोशिश ही नहीं करते। एक भेड़ चाल की तरह जीवन जीने की हमारी आदत

हो गई है। जो कुछ हमारे बुजुर्ग करते थे वही हम आँख बंद करके करते चले जाते हैं। जो आज हम कर रहे हैं वही हमारी संतान करेगी और फिर उसकी अगली पीढ़ी। कभी हमने अपने आप से भी यह पूछने की हिम्मत नहीं की कि जो हम कर रहे हैं वह ठीक है या गलत और उस पर आफत यह है कि इतना कह कर कि यह सब हमारे बुजुर्गों की परम्परा है उन्होंने कुछ सोच कर ही बनाई होगी, अपना पिंड छुड़ा लेते हैं। अर्थ यह है कि जिस गड्ढे में हम दूसरे लोगों को गिरते देखते हैं जाने अनजाने उसी गड्ढे की ओर स्वयं भी बढ़ते चले जाते हैं। जो हमें जगाने का प्रयत्न भी करना चाहता है उसे हम काफिर, पागल करार दे कर अपना पीछा छुड़ाने की कोशिश करते हैं। दास को याद आता है नवीं कक्षा में हिंदी के अध्यापक का सुनाया हुआ एक लतीफा। अध्यापक ने पूरी कक्षा से पूछा कि क्या कोई बता सकता है कि यदि गधे को कुएँ में ढ़केलना हो तो कैसे ढ़केलेंगे? किसी से भी उत्तर न मिलने पर उन्होंने बताया कि यदि गधे को कुएँ की ओर ढ़केलोगे तो वह कभी कुएँ में नहीं गिरता। कुएँ में गिराने के लिए उसे कुएँ की विपरीत दिशा में खींचो वह स्वयं ही आपके प्रयास का विरोध करते करते कुएँ में गिर जाएगा।

इस लतीफे को लतीफा समझकर केवल हँस देना कम से कम जिज्ञासु जीवों के लिए तो लाभप्रद नहीं हो सकता। जो हमें इस नरक से निकालने की कोशिश करता है हम उसका उल्टा ही करने की चेष्टा करते हैं। शाब्दिक तौर पर हम उस गधे से कम नहीं। उस पर तुर्रा यह कि वह तो जानवर है आकाश तत्व उसमें गौण है परन्तु हम प्रकृति के सिरमौर सही मानों में गधे से भी गए गुज़रे हैं। अपना भला बुरा समझने का दावा करने वाली मनुष्य जाति के हम लोग

स्वयं अंदाज़ा लगा सकते हैं कि यह दावा कितना सही है और कितना गलत। पुरातन इतिहास उठाकर देख लें एक ही तरह की भूल पीढ़ी दर पीढ़ी हम करते चले आ रहे हैं और शायद आने वाले समय में यह स्थिति बदले ऐसा सोचना भी गलत ही होगा। जो गलतियाँ हमारे पूर्वज करते रहे हैं वही हम भी दोहराते जा रहे हैं। हमारा व्यवहार जागृत पुरुष का नहीं है बल्कि सुप्त लोगों का सा है अन्यथा हमें नजर आना चाहिए कि बाहरी दौड़ धूप व्यर्थ है परन्तु हम जीवन के किसी भी स्तर पर आँख खोल कर देखने में असमर्थ हैं या यूँ कह लें कि आँख खोलकर हम देखना ही नहीं चाहते।

एक फकीर एक बस्ती के बाहर चौराहे पर डेरा डाले हुए था। उधर से गुजरने वाले अक्सर उससे रास्ता पूछ लेते थे परन्तु उस फकीर के साथ कोई न कोई रोज झगड़ा कर रहा होता था। एक दिन एक आदमी ने उससे रास्ता पूछा कि बाबा बस्ती में जाने का रास्ता कौन सा है? उसने कहा कि इस ओर चले जाओ दो कोस चलने के बाद बस्ती आ जाएगी। दो घण्टे बाद वह मुसाफिर वापस आकर उस फकीर से लड़ने लगा। तुमने मुझे गलत रास्ते पर भेज दिया मैंने तुम्हें बस्ती का रास्ता बताने को कहा था और तुमने मुझे मरघट में भेज दिया। तुम गलत आदमी हो तुरंत यहाँ से अपना डेरा हटा लो। फकीर ने कहा कि भाई मैंने तुम्हें सही रास्ता ही बताया है। मैं पिछले काफी समय से यहीं हूँ। उस मरघट में आज तक जो भी गया है वहीं बस गया है उसे बाहर जाते मैंने नहीं देखा है और जिसको तुम बस्ती कहते हो वहाँ पर तो नित्य ही आना जाना लगा हुआ है। रोजाना कोई आ रहा है, कोई जा रहा है, उसे बस्ती कैसे कहा जा सकता है? जिसमें कोई सदा के लिए बसता ही नहीं।

लेकिन मुसाफिर ने कोई बात न सुनी और यह कह कर फकीर को पीट दिया कि तुम लोगों को गुमराह कर रहे हो। अन्धों की इस दुनिया में जिसे दिखाई देना शुरु हो जाता है उसे गुमराह करने वाला ही तो कहते हैं हम लोग। अन्धों के बीच में आँखों वाले का होना अन्धों के अहंकार पर चोट है इसीलिए अक्सर आँख वाले को कभी सूली पर चढ़ा दिया जाता है, कभी गर्म तवे पर बिठाने की सजा दी जाती है तो कभी जहर प्याला सौगात में दिया जाता है। आँखों वालों को मिटाकर हमें शान्ति हो जाती है कि हमारी आलोचना करने वाला खत्म हो गया। अन्धा तो अन्धे की आलोचना नहीं कर सकता।

कहने का भाव यह है कि हमें आँख खोल कर देखने की जरुरत है। जब तक आँख खोल कर नहीं देखेंगे तब तक मुमकिन नहीं कि व्यर्थ को छोड़ सकें और सार्थक राह पर कदम बढ़ाएँ। जब तक आँख खोलकर नहीं देखेंगे तब तक हमें अपने हाथ खाली ही दिखाई देंगे। अपने अंतर की रिक्तता ही दिखाई पड़ेगी फिर चाहे कितने ही व्रत नियम कर लें, कितने ही तीर्थ क्यों न कर लें, मन्दिरों मस्जिदों में कितने ही सजदे ही क्यों न कर लें कुछ भी हमारे अंतर के शून्य को भर न पाएगा।

हुजूर महाराज तरलोचन दर्शन दास जी ने अपने सत्संग में कहा था कि यदि अच्छा काम करना हो तो एक पल की भी देर न करो। किसी को प्रेम देना हो तो इंतजार मत करो परन्तु यदि बुरा काम करने का मन करे तो सदैव देर करना। किसी से झगड़ा हो रहा हो तो क्रोध करने में एक क्षण की देर कर पाओ तो क्रोध मर जाएगा परन्तु हम मूढ़मति सदा उल्टा ही करते हैं। अच्छा काम करने में हमेशा देरी करते हैं और बुरा काम करना हो तो पल भर

की भी देर नहीं करते। चौबीसों घण्टे, दिन रात जो हम कर रहे हैं वह सब कुछ बिना देखे कर रहे हैं। क्रोध, घृणा, बुरे कर्म सब कुछ बिना देखे बस किए जा रहे हैं। बंद आँखों से जो भी कर रहे हैं उससे हमारा जीवन और भी उलझता जा रहा है। जीवन की अथवा मन की इस समस्या के प्रति हमारा जागना आवश्यक है। जो आदमी देखने लग जाता है, अपने आप का निरीक्षण करने लग जाता है उसके लिए बाहर की दौड़ व्यर्थ हो जाती है और जब बाहर की सब दौड़ व्यर्थ हो जाती है तो भीतर की ओर गमन शुरु हो जाता है। यदि बाहर की दौड़ बंद हो जाए तो जीवन की ऊर्जा अपने अंतर की ओर गति करने लगती है। जैसे बहते झरने का मार्ग यदि अवरुद्ध किया जाए तो वह अपना मार्ग बदल लेता है। ठीक उसी प्रकार चेतना की धारा जो शरीर के नौ दरवाजों से संसार की ओर बह रही है यदि बाहर की दौड़ बंद हो जाए तो चेतना स्वयं ही अंतर्गमन कर जाती है और चेतना का अंतर्गमन ही ईश्वरीय सत्ता में प्रवेश है, सत्य में प्रवेश है, अनन्त जीवन में प्रवेश है। उसी दिन हमें अपने जन्म की सार्थकता का अनुभव होता है। उसी दिन हम जानते हैं कि हमारा अंतर रिक्त नहीं है। उसे हमने खाली समझने की भूल की थी। भीतर तो सब भरा हुआ है क्योंकि हमारे भीतर तो परमात्मा स्वयं बिराजमान है परन्तु इसके लिए बाहर की दौड़ का बंद होना सर्वप्रथम अनिवार्य है। जो बाहर खोने को राजी है वही अंतर की पूर्णता को पाने में समर्थ होता है और जो बाहर भटकता है वह भीतर खो देता है।

एक भिखारी प्रात: अपने घर से अपना झोला लेकर भीख माँगने को तैयार हुआ। घर से निकलने से पहले उसने अपनी झोली में मुट्ठी भर चावल डाल लिए। समझदार भिखारी कभी भी खाली झोली लेकर

भीख माँगने के लिए नहीं निकलता। उसकी झोली में कुछ देखकर भीख देने वाले को यह संतोष जरुर रहता है कि किसी और ने भी दिया है, देने वाला मैं अकेला नहीं हूँ। दूसरे, देने वाले के अहं पर यह चोट भी करता है कि किसी और ने दिया है तो मुझे भी देना चाहिए, नहीं तो मुझमें और भिखारी में अंतर क्या रह जाएगा? आपने राह चलते हुए रेड लाइट सिग्नलों पर भिखारियों को या अपने दरवाजे पर आ कर भीख माँगने वाले के कटोरे में जरूर पैसे देखे होंगे जिन्हें वह उछाल उछालकर भीख माँगता है। यह एक प्रकार से व्यंग भी है और चुनौती भी उनके प्रति जो भीख देने से इंकार कर सकता है। भिखारी की आवाज़ में एक प्रकार का न्यौता भी होता है कि दे दे, यदि नहीं है तो मेरे साथ चल साथ मिलकर मांगेंगे। यह कटोरे में सिक्कों की खनखन भिखारी कि लिए बहुत चमत्कारी काम करती है और आप कभी देखो कि जिसकी झोली खाली होती है, कटोरा खाली होता है उसे भीख कम ही मिलती है। एक बहुत ही पुरानी कहावत है:-

"घरों जाइए खा के अग्गों मिले पका के,
घरों जाइए भुक्खे अग्गों मिलणगे धक्के।"

जिसका पेट भरा हुआ हो उसे ही हर कोई खाना खाने का न्यौता देता है भूखे को कोई नहीं पूछता। आप चाहो तो इसका प्रयोग स्वयं कर के देख सकते हो। भिखारी घर से निकल कर राजपथ पर आ पहुँचा। उसने देखा कि दूर से राजा का हीरे जवाहरात से जड़ा रथ हवा से बातें करता हुआ चला आ रहा है। उसने सोचा कि दिन बहुत ही अच्छा है जिस राजा तक कभी पहुँच न हो सकी थी वही राजा आज रास्ते में ही मिल गया। आज जी भर कर माँग लूँगा ताकि जीवन भर का माँगना छूट जाये। दिल में हज़ारों तरह की बातें लिए

वह अपने सुनहरे भविष्य के सपनों में इतना खो गया कि उसे पता ही न चला कि कब राजा का रथ उसके सामने आकर रुक गया। राजा को पहले कभी देखा न था सो भौंचक्का रह गया। अपना कटोरा तक उठाना भूल गया माँगना तो दूर की बात है। उसे जब होश आया और इससे पहले कि वह अपनी झोली फैलाता राजा रथ से नीचे उतरा और अपना पल्ला फैलाकर उससे कहने लगा कि आज यही सोच कर निकला था कि जो भी पहला व्यक्ति मिलेगा उसके आगे भिखारी बन जाऊँगा। राजा बने बने बहुत कष्ट हो रहा है सोचा कि आज भिखारी बन कर देखा जाए। तुम मुझे पहले आदमी मिले हो मेरी झोली में कुछ डाल दो।

भिखारी को तो जैसे साँप सूंघ गया। सोचा था कि राजा से माँग लूँगा तो सारे जीवन की माँग समाप्त हो जाएगी पर यहाँ तो मामला ही उल्टा हो गया। यहाँ तो जो पास है उसके भी जाने का खतरा पैदा हो गया। उसने झोली में हाथ डाला और खाली बाहर निकाल लिया। जिसने जीवन में सदा माँगा ही हो कभी दिया न हो उसके लिए यह पल बहुत ही तनाव भरा था। देने की आदत नहीं थी सदैव लिया ही था। बार बार वह झोली में हाथ डालता और हर बार खाली ही हाथ बाहर आता। चाहे मुट्ठी भर चावल ही थे पर छूट न रहे थे।

राजा ने कहा कि भाई जल्दी करो जो भी देना हो दे दो, नहीं देना हो तो इंकार कर दो। बड़ी हिम्मत करके उसने झोली में हाथ डाला और एक दाना निकाल कर राजा की फैली हुई झोली में डाल दिया। राजा रथ पर बैठा और रथ धड़धड़ाता हुआ चला गया। अब भिखारी अपने आपको कोस रहा है कि कैसा मनहूस दिन चढ़ा है, निकला था माँगने उल्टा देना पड़ गया। हमारा भी यही हाल होता है

हम निकलते हैं कुछ माँगने, कुछ पाने और बाद में पता चलता है कि जो पास था वह भी जाता रहा। अपना भंडार चाहे जितना मर्जी क्यों न भर जाए परन्तु जो गँवा दिया उसका दु:ख सदा रहता है। जो एक दाना राजा की झोली में डाला था उसका अफसोस दिल में लिए घर लौट आया। घर आकर उसने झोली बेमन से पत्नी को दी और एक ओर उदास होकर बैठ गया। पत्नी ने पूछा कि झोली तो काफी भरी हुई लगती है फिर यह उदासी क्यों है? भिखारी ने सारी बात बताई और अफसोस जताया कि झोली तो चाहे भरी हुई है परन्तु एक दाना तो चला गया। और भी वज़न होता झोली में यदि वह दाना न गया होता पत्नी ने झोली को खोला और जमीन पर उल्टा तो देखा कि पूरी झोली में चावल भरे थे और उसमें जो एक दाना उसने राजा की झोली में छोड़ा था वह सोने का हो गया था।

अब भिखारी दहाड़े मार मार कर रोने लगा। पहले दु:ख था कि हाथ से अपनी चीज चली गई अब यह दुख था कि यदि पूरी झोली ही दे देता तो पूरी झोली के चावल सोने के हो जाते। आदमी सदा दु:ख में ही जीना चाहता है, ऐसे भी दुखी और वैसे भी दुखी। जीवन में जो बाहर के दाने बटोरता है भीतर के जीवन में वह मिट्टी ही होते हैं। जो बाहर के दाने छोड़ता है उसकी भीतर की जिंदगी सोने की हो जाती है। जीवन के अन्त में उसे पता चलता है कि जो इकट्ठा किया था वह मिट्टी था और यदि दे दिया होता तो सोना हो जाता। जो लोग बाहर के जीवन को पकड़े रहते हैं उनकी झोली चाहे कितनी भी भर जाए उनके दु:ख का अंत नहीं होता। वे आखिर में इस बात पर रोएंगे कि जो पकड़े रहे वह मिट्टी का हो गया और जो छोड़ा था वह सोने का हो गया। काश! सारा ही छोड़ देते।

हमारे साथ दूसरी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम अपने मन को यह समझा पाने में सफल नहीं हो पाते कि कहीं जाना नहीं है। हमारे मन की पूरी की पूरी व्यवस्था ऐसी है कि वह कहता है कि कहीं चलो यहाँ कुछ नहीं है। हर समय यह तनावग्रस्त रहता है कि कहीं चलो मंज़िल दूर है। मन को समझाना तो हमारे वश में है नहीं पर इससे बचने का हमने एक रास्ता ढूँढ़ निकाला है कि हम भी उसी के साथ हो लेते हैं और हम भी इसी आधार को ही मूल मान बैठे हैं कि ईश्वर कहीं दूर छिपकर बैठा है। उसे पाने का प्रयास करना पड़ेगा, योजना बनानी पड़ेगी और यदि मंज़िल दूर है तो आज और अभी तो मिल नहीं जाएगी। कल मिलेगी या परसों यानि कि भविष्य में ही कहीं मिलेगी इसलिए आज और कल के बीच यह तनाव मन जारी रखता है। यदि यह तनाव ही समाप्त हो जाए तो मन मर जाता है। जब भविष्य के प्रति दौड़ ही समाप्त हो जाये तो चित्त निष्प्राण हो जाता है। पलटू साहिब कहते हैं:-

हम ने यह बात तहकीक किया,
सब में साहिब भरपूर है जी।
अपनी समुझ कुआँ कै पानी,
क्या नियरे क्या दूरि है जी।
गाफिल की ओर सक सोइ गया,
चेतन को हाल हजूर है जी।
पलटू इस बात को नहिं मानै,
तिस के मुँह में परै धूर है जी।

(वाणी पलटू साहिब)

कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर कहीं दूर नहीं है बल्कि हमारे

इस घट में ही बिराजमान है। यह तो हमारी समझ का फेर है या मन की चाल जो हमें यही समझाने में लगा है कि ईश्वर बहुत दूर सातवें आसमान पर बैठा है। उसे पाने के लिए यह करना पड़ेगा, वह करना पड़ेगा इत्यादि। यही समझा कर मन हमें दौड़ाता रहता है और हम अन्धों की तरह दौड़ दौड़ कर अपना समय गँवा बैठते हैं।

इसी प्रकार जब तक हम स्वयं को जानने में लगे हैं तब तक स्वयं को जाना ही नहीं जा सकता क्योंकि दूर ले जाने की मन की तरकीब हमें अपने ही पास नहीं आने देती। अब देखिए कि मन इतना कुशल है कि जब आप दूर चले जाते हैं तो कहता है पास ही रहना था अब इसे पास आने के लिए भी रास्ता चाहिए, समय चाहिए, तरकीब चाहिए।

जैसे कोई आदमी सपने में कहीं चला गया हो तो उसे वापस तो लौटना पड़ेगा ही परन्तु वास्तविक सत्य यह है कि वह कहीं गया ही नहीं है। हम तो वहीं हैं परन्तु हमारा मन कहीं चला गया है। हमारी कामना चली गई है हम वहीं के वहीं खड़े हैं परन्तु हमें ऐसा लगता है कि हम कहीं चले गए हैं। यदि जहाँ हम खड़े हैं वहीं पर अपनी कामना को, अपने मन को रोक पाएँ तो जान लेंगे कि हम क्या हैं? कौन हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि मन हमें यह समझाता है कि भीतर जाना है, अपने भीतर जाना है परन्तु भीतर तो हम हैं ही। सवाल भीतर जाने का नहीं है, हम जिन रास्तों से बाहर गए हैं उन रास्तों को जानकर उनका त्याग करने का है। प्रश्न उन रास्तों को बंद करने का है जिनके द्वारा हमारा मन हमारी जीवन ऊर्जा को बाहरी संसार में भटका रहा है। भीतर तो हम हैं ही, जो बाहर गया है वह विचार है, कामना है और यह बाहर इसलिए गया है कि हमने अपनी

वासना पूर्ति के लिए इसे भेजा है। विचार वासना के वाहन पर बैठकर चला गया है और हम जस के तस खड़े हैं। जो विचार की किरणें हम बाहर भेज बैठे हैं उन्हें वापस लाने की बात है। चतुर मन आने-जाने के इस खेल में ही मानव को उलझाए रखता है। स्वयं तो अशान्त है ही हमें भी अशान्त करता है।

अशान्ति का वास्तविक अर्थ यह है कि जहाँ हम हैं वहाँ न होने को हमारा मन बेंचैन है। यही हमारे मन की अशान्ति है। आप मन्दिर में बैठे प्रवचन सुन रहे हैं, किसी सन्त-महात्मा का सत्संग सुन रहे हैं परन्तु मन आपको समझाता है कि यहाँ कुछ नहीं रखा, क्यों समय खराब कर रहे हो, चलो कहीं ओर चलते हैं। जो शान्ति हमें वहाँ मिलनी चाहिए वह इसलिए नहीं मिल पाती क्योंकि अपने मन की इस दौड़ को रोकने में ही हम अपनी सारी ऊर्जा लगा रहे होते हैं और नतीजा वही ढाक के तीन पात परन्तु यदि जहाँ हैं जैसे हैं वैसे ही होने की तरकीब समझ में आ जाये तो आप शान्त हो जाओगे। मत उलझो मन से। बस इतना कह दो कि मैं तो यहाँ हूँ और यहीं रहूँगा तुम्हें जाना है तो जाओ। उपेक्षित मन ज्यादा दिन तक नहीं जी सकता परन्तु यह इतना आसान भी नहीं है जितना कहना और सुनना, पर अभ्यास से सब कुछ सम्भव हो सकता है। दूसरा तरीका यह भी है कि जो बच्चा माँ बाप को तंग करता हो, कहीं टिकने न देता हो उसे किसी काम में व्यस्त कर देने से ही बात बन जाती है। जो बच्चा अपने आप में व्यस्त हो जाए फिर वह कहीं चलने की, कहीं जाने की जिद नहीं करता। मन को तो कोई काम चाहिए आप नहीं दोगे तो वह स्वयं खोज लेगा।

किसी व्यक्ति को एक जिन्न मिल गया। उसने कहा कि मेरे

आका, मैं तुम्हारी हरेक इच्छा पूरी करूँगा बस मेरी एक ही शर्त है कि हर काम समाप्त होते ही मुझे दूसरा काम देना होगा। जिस दिन मुझे काम मिलना बंद हो जाएगा मैं तुम्हें खा जाऊँगा। अब व्यक्ति के पास जितने भी काम थे जिन्न ने पलक झपकते ही पूरे कर दिए और सिर पर आकर खड़ा हो गया, मेरे आका और काम? वह व्यक्ति बहुत ही समझदार था उसने कहा कि जाओ सागर की लहरें गिन कर आओ। जिन्न, जो हुक्म मेरे आका, कह कर लहरें गिनने चला गया और आज तक लहरें ही गिन रहा है। हुजूर महाराज दर्शन दास जी समझाते हैं कि हमारा मन भी ऐसा ही है बस जरुरत है उसे लहरें गिनने भेजने की। इसे काबू में करने का आसान सा तरीका है कि इसे सुमिरन, ध्यान, समाधि में लगा दो। सुमिरन के लिए हुजूर कहते हैं कि एक नियत समय व स्थान चुना जाए तो बहुत ही फायदा होता है। हमारा शरीर एक यन्त्र की तरह काम करता है। जैसे यदि हम रोज एक नियत समय पर भोजन करते हैं तो उस समय के आते ही हमारा शरीर भोजन की माँग करने लगता है। यदि आप दोपहर में एक बजे भोजन करते हैं तो घड़ी पर नजर पड़ते ही आपको भूख लग जाती है चाहे घड़ी गलत समय ही क्यों न बता रही हो और समय वास्तव में बारह या साढ़े बारह का ही क्यों न रहा हो। हमारा मन भी एक तरह से यन्त्र की ही तरह काम करता है। नियत स्थान व नियत समय पर ही दैनिक सुमिरन का अभ्यास करें। इससे एक समय ऐसा आएगा कि हमारे शरीर व मन में ध्यान व सुमिरन की भूख निर्मित होने लगेगी। यह तय है कि यह आसान नहीं होगा क्योंकि जो मन जन्मों से बाहर भागने का आदी है वह एक दिन में तो काबू नहीं आ सकता और न ही इसके लिए कोई समय सीमा ही बाँधने की जरूरत

है क्योंकि समय सीमा बाँधने का अर्थ है फिर से लोभ की सवारी। एक ही स्थान व समय पर रोज रोज ध्यान के लिए बैठने से शरीर व मन आपसे ध्यान व सुमिरन की माँग करने लगेगा। जिस दिन यह होगा उस दिन जैसे नींद उतरती है वैसे ही इस घर में ईश्वरीय सत्ता का अवतरण होगा। जैसे प्रेम किया नहीं ज़ाता हो जाता है वैसे ही ध्यान किया नहीं जा सकता अपितु यह घटित होता है। इस स्थिति को जबरदस्ती प्राप्त नहीं किया जा सकता। जब चेतना का दीया जलता है भीतर का अन्धकार मिट जाता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जब इस घट में नाम का दीपक जल जाता है तो पाप कर्म ऐसे जल जाते हैं जैसे सूखी घास में एक चिंगारी पड़ जाए तो वह धूँ धूँ करके जलने लगती है।

जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास,
मानो चिनगी आग की परी पुरानी घास।।

(कबीर साखी संग्रह, भाग-१)

भीतर चैतन्य का दीपक जल जाए तो जन्मों के पाप विसर्जित हो जाते हैं। यदि भीतर दीपक जला हो तो जो भी आप कर्म करते हो वह पुण्य कर्म होते हैं। जिसके भीतर दीपक जल गया हो वह पाप कर्म कर ही नहीं सकता। बाहर से देखने में चाहे लगे कि यह पाप कर्म है परन्तु वह पुण्य ही होगा और जिसके भीतर अभी दीया नहीं जला उससे पुण्य कर्म कभी हो नहीं सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो अच्छे कर्म हम करते हैं वह अच्छे नहीं हैं या अच्छे कर्म हो ही नहीं सकते। जो भी तथाकथित अच्छे कर्म हम करते हैं उनके पीछे भी हमारी लालसा, हमारी वासना, प्रसिद्धि पाने की हमारी कामना ही होती है। दान भी मनुष्य करेगा तो यह देखकर कि कोई देख रहा है

या नहीं। यह सेवा, यह दान केवल यश मान की प्राप्ति के लिए ही हम करते हैं तो फिर कैसे कह सकते हैं कि कर्म पुण्य कर्म हैं? बिना अंतर प्रकाश के जो भी पुण्य हम करते है वह वास्तव में पाप कर्म ही हैं।

बाहर से हम चाहे कितने भी शान्त, सुशील, सज्जन नजर आते हों परन्तु हमारे भीतर दुनिया भर की अशान्ति, अभद्रता भरी है, कोलाहल भरा है। हुजूर महाराज दर्शन दास जी का फर्मान है कि ईश्वरीय संगीत या शब्द या नाद हमारे भीतर सदा से गुँजायमान है परन्तु अपनी बोलने की आदत के चलते हम इस दैवीय संगीत को सुन नहीं पाते। यह सूक्ष्म नाद हमारे भीतर मौजूद है लेकिन निरन्तर शोर से, कोलाहल से भरे हम लोग इसे सुन ही नहीं पाते इसलिए हुजूर कहते हैं कि ध्यान, सुमिरन का समय ऐसा हो जब कम से कम शोर हो और यह समय प्रभात से पहले का ही हो सकता है। रात्रि के अंतिम प्रहर में सारी प्रकृति एकदम शान्त होती है। यही समय बंदगी के लिए एकदम उपयुक्त है। इस अवस्था में जो सबसे जरुरी चीज है वह है प्रतीक्षारत हृदय। यह जरुरी नहीं कि अभी ही कुछ घटित होगा। जो कूड़ा बरसों से, जन्मों से जमा है वह एक दिन में तो जाएगा नहीं। धैर्यवान व निष्ठावान जिज्ञासु ही इस महा समर में जीतता है। जैसे जैसे शब्द के साथ हमारा तालमेल बैठता है वैसे वैसे आनन्द आना शुरू होता है। हमारी जीवन ऊर्जा जो निरन्तर नीचे की ओर बह रही है उसे ऊपर की ओर मोड़ने के लिए बहुत परिश्रम की जरुरत होती है और एक बार इसका प्रवाह ऊपर की ओर मुड़ जाए तो फिर आनन्द ही आनन्द है।

एक आश्रम में एक सन्यासी था। बहुत बोलता था, हरेक से तर्क

विवाद करना उसे भाता था। एक क्षण कों भी मौन न बैठ पाता। उस आश्रम में एक दिन एक और सन्यासी आकर रुका। वह उस मेहमान के पीछे पड़ गया और वाद विवाद में उसका इतना बुरा हाल कर दिया कि वह आश्रम से भाग खड़ा हुआ। आश्रम का गुरु उसे तर्क वितर्क करते देखता रहा। जब मेहमान पराजित हो कर चला गया तो गुरु ने उससे कहा कि पुत्र, तूँ कब तक यह व्यर्थ की बकवास करता रहेगा? क्या मिलेगा इस विवाद से? जो कुछ मिलता है वह संवाद से मिलता है, मौन में मिलता है वाद विवाद में नहीं। कब तक शब्दों के जाल के साथ खेलता रहेगा? वह हँसने लगा पर बोला कुछ नहीं मौन हो गया, बिल्कुल चुप। उसे इतनी सी बात से सत्य का ज्ञान हो गया। जब तक वह जीवित रहा कभी न बोला। उसे दिखाई दे गया कि वास्तव में ही वह शब्दों के जाल में अपना बहुमूल्य समय खोता जा रहा है। जिस ज्ञान के बलबूते वह विवाद कर रहा है वह उधार का है और कुछ भी नहीं। उसे नजर आ गया और वह उसी क्षण मौन हो गया।

आश्रम के दूसरे लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि हर समय बोलने वाला एक दम कैसे मौन हो गया? गुरु जी से पूछा कि गुरु जी इसे क्या हुआ है? यह तो एकदम पागल सा लगने लगा है। गुरु जी ने उत्तर दिया कि काश! ऐसे पागल व्यक्ति संसार में और हो जाएँ तो यह संसार स्वर्ग हो जाए। जो लोग सोच विचार करते हैं वह सत्य को उपलब्ध नहीं होते। वह तो इसी में पड़े रहते हैं कि आज करुँगा, कल करुँगा। इसी आजकल में समय निकल जाता है। सत्य को केवल वही लोग उपलब्ध होते हैं जो कूदने की हिम्मत रखते हैं, दाँव लगाने की हिम्मत रखते हैं। बहुत ही उलझा हुआ है हमारा मन। इसे पहचानने

का प्रयत्न करें। अपने झूठे चेहरे को पहचानें, जो झूठी गवाहियाँ हम नित्य प्रति देते आ रहे हैं उन झूठी गवाहियों को पहचानें। जिसे हम प्रेम करना कहते हैं उसके पीछे छिपे द्वेष व घृणा को पहचानें। जिस ज्ञान को हम ज्ञान मान बैठे हैं उसकी व्यर्थता को पहचानें। जिस दिन यह सम्भव हो पाएगा उस दिन अन्धकार की सारी दीवारें गिर जाएंगी और जगमगाता हुआ सूर्य हमारे अंतर में खिल उठेगा। उस दिन हमारी निर्दोषता जो हमारी झूठी लालसा में कहीं खो गई है हमें वापस मिल जाएगी। सरलता हमें दोबारा मिल जाएगी। जो लोग सरल हो जाते हैं उन्हें ही ईश्वर की सत्ता प्राप्त होती है और उलझे हुए लोग चौरासी के चक्कर ही लगाते रहते हैं।

हुजूर महाराज दर्शन दास जी के चरणों में विनम्र निवेदन है कि हम भी अपने जीवन में सरल हो पाएँ, निर्दोष हो पाएँ। जैसा कि दास ने पहले भी लिखा है कि मन की पहेली बड़ी ही विचित्र है। जो कुछ भी विवरण इस पुस्तक में दिया गया है वह दास के निजी तजुर्बों पर आधारित है। हम जिज्ञासु लोगों की धारणा रही है कि हम स्वयं परिश्रम करने की बजाए दूसरे लोगों के तजुर्बें पढ़ कर उनके मुताबिक ही अपनी कार्य-विधि बनाने की कोशिश करते हैं। यदि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद भी ऐसा ही कोई करता है तो बात फिर वहीं आकर अटक जाती है कि उधार का ज्ञान किसी का भला नहीं कर सकता। अपना मार्ग सभी को स्वयं ही खोजना पड़ेगा। प्रेरणा स्रोत सबके लिए कुछ न कुछ संकेत करता है परन्तु मार्ग तो खोजने से ही मिलेगा।

जिज्ञासा जागना, किसी विषय के बारे में दिल में खोज करने का विचार आना पहला कदम है अध्यात्म की राह पर लेकिन मंजिल तक

पहुँचने के लिए स्वयं चलना तो पड़ेगा ही। कोई आपको अपने कन्धे पर बिठा कर मंजिल तक नहीं ले जा सकता। कई लोग कहते हैं कि सन्त की कृपा दृष्टि से सब सम्भव है। इसमें कोई दो राय नहीं कि ऐसा हो सकता है परन्तु इतिहास उठा कर देखें कि कितने लोग सन्त कृपा से, बिना चले ही मंजिल तक पहुँचे हैं? मुझे तो एक भी नज़र नहीं आता। जागृत पुरुष हमें राह दिखाते हैं, उस राह पर चलकर मंजिल के पास हमें स्वयं ही जाना पड़ेगा। युग पुरुषों के सम्बन्ध में हम इतना पढ़ते है। उन्हे कितना परिश्रम करना पड़ा है यह भी हम समझ सकते हैं।